ॐ श्री भगवते नमः ॐ

वर्ष ४

भक्ति

संख्या ५

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वार्षिक चन्दा २)

सम्पादक—
म० कृष्णानन्द, भूमानन्द

एक प्रति ।)

माघ सम्वत् १९८६

अहल्योद्धार ।

परशत पद-पावन शोक-नशावन प्रगट भई तमपुञ्ज सही,
देखत रघुनायक जन-सुखदायक संमुख होइ करजोरि रही ।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ४ | भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, माघ पूर्णिमा सं० १९८६। | अङ्क ५

वेदोपदेश

ओं यं क्रन्दसी अवसातस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने।
यत्राधिसूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

जिस परमात्मा को आकाश और पृथिवी अपना निर्माण कर्त्ता देखते हैं, जिसकी महिमा को अपनी बुद्धि से यह देदीप्यमान आकाश और पृथिवी विचार रहे हैं, जिस परमात्मा की सत्ता से यह सूर्य उदय हो कर जगत् को प्रकाशित करता है, ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥

ओं आपो ह यद्बृहतीर्विश्व मायन्नगर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम्।
ततो देवानां समवर्तता सुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २ ॥

जिस गर्भ को धारण करते हुए यह विश्वात्मक जल स्थित थे. और जिस से यह पंच भूतात्मक सृष्टि उत्पन्न हुई है, जो विश्वात्मक प्रजापति देवादिकों का प्राणात्मक वायु है ऐसे सुख स्वरूप भगवान की हवि प्रदान द्वारा हम परिचर्या करें ॥ २ ॥

ओं यश्चिदापो महिनापर्य पश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधिदेव एक आसीत् कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥

जो प्रजापति प्रलय काल में अपने माहात्म्य से जल को देखता था जो जल इस यज्ञोपलक्षित विकार जात को पैदा करते हैं, जो उस जगत् की उत्पत्ति के निमित्त प्रजापति को धारण करते हैं, जो प्रजापति सब देवताओं का ईश्वर है, ऐसे सुख स्वरूप भगवान् की हवि द्वारा हम परिचर्या करें ॥ ३ ॥

ओं मानो हिंसीज्जनिताय: पृथिव्यायो वा दिवं सत्य धर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४ ॥

जो सत्य धर्म युक्त पृथिवी तथा अन्तरिक्षादि का पैदा करने वाला है, जिस ने इन आनन्द दायक महान जलों को पैदा किया है, वह हमारा नाश न करे, ऐसे सुख स्वरूप भगवान् की हवि अर्पण से हम परिचर्या करें ॥ ४ ॥

ओं प्रजापतेनत्वदेता न्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयम्स्यामपतयो रयीणाम् ॥ ५ ॥

हे प्रजापते परमात्मन ! तुम्हारे सिवाय और कोई इन सब लोकों को उत्पन्न करके धारण करने में समर्थ नहीं है, जिस फल की कामना से हम आप को हवि अर्पण करते हैं वह हमको मिले और हम धन के स्वामी होंय ॥ ५ ॥

सहस्त्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ ६ ॥

परमात्मा अनन्त शिरों अनन्त नेत्रों अनन्त चरणों से युक्त है वह पुरुष सकल ब्रह्माण्ड को व्याप्त करके दश अंगुल बाहर स्थित हुवा ॥ ६ ॥

पुरुष एवेद७ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ७ ॥

यह सब भूत वर्तमान तथा भविष्यत जगत पुरुष ही है। वही देवत्व का स्वामी है। जिस कारण से वह प्राणियों के फल रूप निमित्त से अपनी कारण अवस्था को त्याग कर परिदृश्य मान जगदम्बा को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुष: ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ८ ॥

यह जो कुछ अतीत अनागत तथा वर्तमान जगत् है वह सब इस परमेश्वर की महिमामात्र है। वह उस से बहुत अधिक है, सब भूतमात्र उस परमात्मा के एक पाद हैं शेष तीनों पाद दीप्यमान चैतन्य रूपमें स्थित हैं ॥ ८ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ९ ॥

यह त्रिपात् बहु रूप पुरुष संसार के गुण दोषों से रहित अपनी उच्चता से स्थित है इस तरह स्थित पुरुष का एक पाद सृष्टि संहार रूप आविर्भाव तिरोभाव को प्राप्त होता है उससे वह माया में आकर देव तिर्यगादि नाना रूप से अनेक स्थावर जंगम अभिलक्षित जगत् हो व्याप्त होता है ॥ ९ ॥

तस्माद्विराडजायत विराजो अधि पुरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥ १० ॥

इस आदि पुरुष से जगत् रूपी विराट उत्पन्न हुआ उसी देह को अपना अधिकरण करके वह परमात्मा जो सब वेदान्त शास्त्र का वेद्य है जीव रूप से उसमें प्रविष्ट हुआ वह पुरुष इस तरह पैदा होकर देव तिर्यक् मनुष्यादि रूप हुआ और उसने पृथिवी को और उसके पश्चात् देवादि शरीरों को रचा ॥१०॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासादाज्यं ग्रष्मि इध्मः शरद्धविः ॥ ११ ॥

जिस समय देवताओं ने बाह्य द्रव्य के अभाव में पुरुष को ही हविद्वारा संकल्प करके मानस याग का विस्तार किया उस समय उस यज्ञ में वसन्त ऋतु की घृत रूप से, ग्रीष्म ऋतु की समिध रूप से और शरद ऋतु की हवि रूप से कल्पना की गई ॥ ११ ॥

भक्त दामोदरदास

कांची नगर में एक दामोदर दास नाम के निर्धन ब्राह्मण निवास करते थे। घर में स्त्री के सिवाय और कोई नहीं था। वे भिक्षावृत्ति से आजीविका चलाते थे। भिक्षामें जो कुछ मिल जाता उसी से घर पर आये हुये अतिथि अभ्यागत और साधु महात्माओं का यथोचित सत्कार कर बचे हुये को अपने उदर पूर्ति के काम में लाते। यदि किसी समय भिक्षा में कुछ न मिलने से या साधु सन्तों को भोजन कराने से कुछ न बचने के कारण उन्हें उपवास करना पड़ता तब भी उसी प्रकार आनन्द मान निरन्तर भगवान् के भजन ध्यान में

लगे रहते। वे निष्काम भाव से ईश्वर चिन्तन करना ही अपना मुख्य कर्तव्य समझा करते। भगवान् से एक मात्र उनकी यही मांग थी।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामय।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

जिस प्रकार लोहे की तिजूरी में छिपाने पर भी कस्तूरी छिपी नहीं रह सकती, उसकी पूकार उनका अपूर्व गुण सौरभ भी जीर्ण शीर्ण पर्ण कुटी को भेद कर त्रिभुवन में व्याप गया। उस मृदु सौरभ से आकर्षित हो त्रिभुवनपति भी इसका आनन्द लेने के लिये एक दुर्बल संन्यासी का रूप धारण कर उसके आदि स्रोत कांची नगर में आ पहुंचे और दामोदर दास की कुटी के द्वार पर आ खड़े हुये। इस समय दामोदर दास भीतर स्त्री सहीत, आज भिक्षा में कुछ भी न मिलने से इस पूकार भगवान् की स्तुति कर रहे थे।

"हे पूभो! आपही इस विश्व के नियन्ता और पालक हैं। हम लोग एक मात्र आपकी शरण हैं। हे करुणासागर! आपही निर्बल के बल हैं, भक्तों के रक्षक और दुःख विनाशक हैं। स्वामिन्! सब का दुःख हरने में आपही समर्थ हैं। हे दीनबंधु! हम लोगों को आपके अनुग्रह से और कोई दुःख नहीं है। दुःख है तो केवल एक बात का कि यदि इस समय कहीं से कोई अतिथि आगये तब किस पूकार उनकी सेवा की जायगी"

इस प्रकार प्रार्थना करते हुये दंपति अश्रु-बिन्दुओं से पृथ्वी भिगो रहे थे इतने में ही बाहर से किसी अतिथि का कातर शब्द उनके कान में पड़ा। घबराये हुये बाहर आकर दामोदर दास ने एक वृद्ध तेजस्वी महापुरुष को देख कर, भक्ति पूर्वक दंडवत प्रणाम कर विनय पूर्वक हाथ जोड़ कर आज्ञा पूछी। यह सुन कर संन्यासी बोले, "हे भाई! तू अतिथियों को आदर सत्कार से भोजन कराता है' यह सुन कर ही मैं भोजन की इच्छा से तेरे द्वार पर आया हूं। हे भक्त! मैं भी जिसको सेवा में प्रीति नहीं है उनके घर का अन्न नहीं ग्रहण करता। दामोदर दास को जिस बात की चिन्ता थी वही सामने आ खड़ी हुई।

होइ है वही जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावहि साखा॥

यह विचार कर दामोदरदास योगेश्वर के चरण को अत्यन्त विनय पूर्वक कहने लगे, "हे भगवन! आप बहुत श्रमित प्रतीत होते हो, कृपया इस दर्भासन पर विराजो, मैं अभी आता हूं"। इतना कह वह झट भीतर चले गये और अपनी पत्नी को सारा हाल सुना कर 'क्या करना चाहिये, सलाह करने लगे। घर में तो एक दाना भी नहीं था। पति पत्नी दोनों बड़े निराश हुये और भगवान् से कहने लगे, " हो प्रभो! हे दीन दयालु! हमारे ऐसे दुर्बल प्राणियों को ऐसी कठोर परीक्षा क्यों"! पति को इस तरह अधीर होते देख सती के मन में बड़ा दुःख हुवा और उसे अचानक एक उपाय सूझ पड़ा। उसने झट पति को नाई के पास से छुरा (उस्तरा) लेने को भेजा।

दामोदर विचारा क्या करता। स्त्री की सलाह के अनुसार नाई के यहां से उस्तरा ले आया और उसे पत्नी के पास लेजा कर बोला, "बोलो! अब क्या करना है"। यह सुन कर सती हंसते हंसते अपने केश पाश बना कर बोली, "स्वामिन्! इनमें से मेरे आधे केश काट डालो। और इसका आधा

बट कर, उसे बेचने से जो कुछ प्राप्त हो उससे अतिथि का सत्कार करो"।

धर्म परायण सती के उपर्युक्त वचन सुन कर दामोदर प्रसन्न हो मन ही मन में उसे अनेक धन्यवाद देने लगा और उसके कहे अनुसार उसकी वेणी के मध्य में से कितने ही केशों के गुच्छे काट लिये और दोनों स्त्री पुरुषों ने मिल कर उसका नाड़ा बट लिया। दामोदर नाड़ा लेकर बजार में बेचने चले। सौभाग्य से शीघ्रही ग्राहक भी मिल गया, और उचित मूल्य में उन नाड़ों को खरीद लिया। उसके बाद दामोदर अपने इष्ट देव का उपकार मानता हुवा नाड़ों की कीमत से सामान खरीद लाया। गृह कार्य में चतुर पतिव्रता ने देखते ही देखते भोजन तैयार कर दिया पीछे दामोदर दास आनन्द पूर्वक अतिथि को घर में बुला लाया और आदर सहित चरण पखार पादोदक आचमन कर उन्हें आसन पर भोजन करने बैठाया।

अहा आज दामोदर के सद्भाग्य की बराबरी कौन कर सकता है जिसके घर स्वयं भगवान अतिथी रूप में भोजन कर रहे हैं। सत्य है भगवान तो भाव के भूखे हैं। उन्हें अनेक प्रकार के व्यंजन से सन्तोष नहीं होता। भिलनी के बेर, सुदामा जी के तंदुल, विदुर जी के साग पात और कर्मोबाई के खीचड़ में जैसा स्वाद आया था उसी का उन्हें आज फिर अनुभव होने लगा। भक्त की भावना को वे मन ही मन सराहने लगे। दामोदर के घर धातुपात्र नहीं है तो भी सकल ब्रह्मांड के स्वामी भक्त के भाव वश पत्तल में ही भोजन करने लगे।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृत मश्नामि प्रयतात्मनः॥

दामोदर की पत्नी ने संन्यासी को वृद्ध और क्षीण काय देख कर थोड़ा थोड़ा परोसना शुरु किया परन्तु सर्व शक्तिमान भगवान ऊपर से देखने में क्षीण काय प्रतीत होते थे लेकिन वास्तव में वैसे थोड़े ही थे। देखते देखते सब कुछ भक्षण कर गये और फिर सन्तोष पूर्वक कहने लगे, "भोजन बड़ा स्वादिष्ट बना है। अहा! कितने दिनों पर आज तृप्ति पूर्वक आहार मिला"। अतिथि भगवान के वचन सुन कर दामोदर दासकी पत्नी ने उठ कर बचा हुवा भोजन लाकर भी परोस दिया। नित्य तृप्त भगवान तो अपने भक्त की दृढता देखने आये थे। जो कुछ था सब चप चप उड़ा गये। अन्तर्यामी प्रभु अब कुछ भी नहीं बचा देख आचमन करके हाथ मुंह धोकर उठ खड़े हुये और मन में कहने लगे, "अहो! इनका जीवन धन्य है। घर में अपने लिये एक दाना भी शेष नहीं बचा, तिस पर भी कैसी अपूर्व भक्ति और श्रद्धा सहित अतिथि का सत्कार करते हैं। देखो! स्वयं सारे दिन के भूखे रहने पर भी सब भोजन मुझे परोस दिया और आप आनन्द सहित निराहार रह गये। धन्य है इस सती को जिसने अपने सौभाग्य सूचक केश कलापों का भी अतिथि के लिए त्याग कर दिया"।

इसके उपरान्त उनको धन्यवाद देते हुये भगवान कहने लगे, 'हे भक्त! तुम्हारी सेवा ने मुझे मोह लिया है। इतनी दरिद्रावस्था होने पर भी तुम्हारी अतिथि सेवा परायणता देख कर मैं बड़ा

सन्तुष्ट हुवा हूं। लेकिन भाई शाम होने को आगई। मैं बहुत चलने से वृद्ध होने के कारण अति थक गया हूं इसलिये आज रात को यहीं विश्राम कर कल प्रातः काल चला जाऊंगा। मेरे लिये तुम लोगों को अधिक परिश्रम या कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा केवल एक मुट्ठी खिचड़ी से ही काम चल जायगा।

दामोदर दास 'जो आज्ञा' कह कर भीतर फिर स्त्री से सलाह करने चला गया। उसकी स्त्री को अब विचारने में अधिक देर बिताने की आवश्यकता नहीं थी। उसने स्वामी से झट छुरे से बचे हुये बाल काटने को कहा और फिर उसके नाड़े बांट कर बाजर में बेचने भेज दिये। इस बार भी ग्राहक तैयार मिलगया और दामोदर उसकी कीमत से सामान लेकर स्त्रीके पास चला आया। स्त्री ने जल्दी से रसोई बनाकर तैयार कर ली।

दामोदरदास और उस की स्त्री ने अतिथिको फिर आदर सहित भोजन कराया। इस बार भी भगवान् बारम्बार मांग कर सब कुछ चट कर गये और उनके लिये एक दाना भी अवशिष्ट न छोड़ा। भोजन के बाद उन के आराम करने के लिए दामोदरदास ने एक दर्भासन बिछा दिया और भगवान् उस पर सुख पूर्वक सो गये।

अहा! शेष नाग, गरुड़, मुनियों के हृदय कमल और रुद्र देवताओं के वक्षःस्थलपर शयन करने वाले त्रिलोकीनाथ आज भक्त के एक दर्भासन पर शान्ति से आराम कर रहे हैं। धन्य है भक्त के विशुद्ध प्रेम और भक्ताधीन भगवान् को।

अतिथि महाराज आराम कर रहे हैं और दामोदरदास धीरे धीरे उन के पैर दबा रहे हैं तथा उनकी स्त्री एक फटे कपड़े से हवा कररही है। भावग्राही भगवान् वैकुण्ठ के वैभवों को भी तुच्छ मान कर निद्रावश होगये।

उन को इस प्रकार सुख से सोते देख सती अपने स्वामी से कहने लगी, "अहा! अतिथि महाराज कितने वृद्ध और अशक्त हैं। प्रातःकाल भी इन में जाने की शक्ति कैसे होगी? इसलिए नाथ! आप सुबह ही भिक्षा को जाइयेगा उसमें जो कुछ मिल जायगा उसे ही इनके समर्पण किया जावेगा। कल भी आज की तरह उपवास करना पड़े तो कोई हरज नहीं लेकिन इनको भूखा विदा करके कैसे बनेगा"? दामोदरदास भी बोल उठे, हां, हां, ठीक है। कल भोजन कराकर ही इन्हें विदा करेंगे।

जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति से परे भगवान् का जागना और सोना कैसा? वे अपने भक्तों की सब बातें सुनकर आनन्द से पुलकित हो उठे। वे अपने भक्तों को अब और इस स्थिति में नहीं देख सके। उन्हें तुरन्त अपनी मायावी निद्रा को वश कर, प्रथम सती का बिना केश का माथा देख, उस पर हाथ फेरते हुए कहने लगे, "माता तुम्हारा समस्त मस्तक दिव्य केश कलापों से परिपूर्ण हो जाय तुम्हारा सकल शरीर नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो जाय और तुम्हारे शरीर में अनुपम सौन्दर्य फूट निकले।" जिस जिस प्रकार भगवान् के मुंह से शब्द निकलते गये उसी प्रकार सती का स्वरूप और स्थिति बदलती गई। अब उन की नजर दामोदर की जीर्ण शीर्ण कुटी पर पड़ी। उस परभी कृपा दृष्टि से उसे अट्टालिका बना दिया। उनकी करुणा दृष्टि से घर की खिड़की द्वार आदि सब मणि माणिक्य से सुशोभित हो गए। अब भगवान् ने दोनों दम्पति के शिर पर अपना कर कमल रख आशीर्वाद दिया

"हे भक्त ! अब तुम लोग यहां पर सुख पूर्वक वास कर अन्त में वैकुण्ठ गति पाओगे"।

इस तरह युगल भक्तों को अमृतमय आशीर्वाद दे एक बार पुनः सती के दर्शन कर अन्तर्धान होगये। अरुणोदय होते ही सती एकाएक उठ खड़ी हुई और एक ही रात में इतना फेर फार देख कर आश्चर्य चकित हो स्वामी को जगाने लगी। स्वामी का भी दिव्य स्वरूप देख इसके आश्चर्य का पार नहीं रहा। दोनों मिल कर वृद्ध अतिथि को इधर उधर ढूंढने लगे। लेकिन उन का कहीं भी पता नहीं लगा। दामोदरदास अपने प्रभु की लीला देख आनन्द से ध्यान मग्न हो जड़ स्तम्भवत वहीं खड़े रहे, नयनों से अश्रुपात होने लगा। थोड़ी देर में अपनी स्त्री से बोले- "सती ! शान्त होवो ! वह वृद्ध अतिथि कोई सामान्य पुरुष नहीं थे। वे सर्वत्र हैं और कहीं नहीं हैं। इस प्रकार खोजने से उनका कहीं पता नहीं लगेगा। निश्चय जानो कि जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कर्ता सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने घर वृद्ध अतिथि का रूप धारण करके आए थे। हम लोगों ने उन्हें सामान्य पुरुष समझ कर कोई सेवा शुश्रूषा भी नहीं की। हाय ! दुर्भाग्य से आया हुवा रत्न हाथ से जाता रहा।" इस प्रकार दामोदर दास अनेक पश्चात्ताप करने लगे और अपने अज्ञानकृत अपराधों के लिये प्रभु से क्षमा याचना करने लगे।

इसके अनन्तर अतिथि रूप में भगवान् का साक्षात्कार होने की खुशी में उन्होंने बड़ा उत्सव मनाया। अन्त में भगवान् की, भगवद्भक्तों की और गो ब्राह्मणों की सेवा आदि में अपने शेष दिवस बिताने लगे और देहान्त होने पर वैकुण्ठ में जा दिव्य देह धारण कर वैकुंठनाथ की सेवा में लग गये।

भगवद्भक्ति

गतांक से आगे

श्रीगुरु की महिमा।

सर्व पूज्य सदापूर्णं अखंडानन्दविग्रहम्।
चित्स्वभावं सदाशीलं नमामि श्रीमद्गुरुम्॥

(ले० श्री भोले बाबाजी अनूपशहर)

सारामः-महाराज ! कल आपने कीर्तन निष्ठा का वर्णन किया था और कई भक्तों की कथायें सुनाई थीं, आपके वचनामृत सुनने से तृप्ति नहीं होती, ज्यों २ सुनता हूं, रुचि दूनी होती जाती है, कृपा करके आज गुरु का माहात्म्य सुनाइये और गुरु कितने हैं, एक ही गुरु करना चाहिये अथवा अधिक ?

मस्तरामः-भाई ! श्री गुरु की महिमा किस से वर्णन हो सक्ती है ? ब्रह्मांड भर में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो श्री गुरु का माहात्म्य वर्णन कर सके, फिर भी अपनी बुद्धि अनुसार संक्षेप में कुछ सुनाता हूं, ध्यान देकर सुन ! शास्त्र का वचन है कि गुरु तीन हैं, प्रथम गुरु पिता, दूसरा गुरु संस्कार-कर्ता जिसने यज्ञोपवीत दिया हो और तीसरा गुरु भगवत् मंत्र और भगवद्धर्म का उपदेश करने वाला है। एक शास्त्र के वचन से स्त्री का गुरु पति ही है। यद्यपि ये सब मर्यादा और महिमा में बराबर

हैं। मैं तुझे इसी निष्ठा में उस गुरु का माहात्म्य सुनाता हूं, जो गुरु भगवत् प्राप्ति के हेतु किया जाता है। वेद, शास्त्र तथा सब महात्माओं का संगत है कि गुरु और भगवत् में कुछ भी भिन्नता नहीं है, दोनों अभिन्न हैं, भागवत् के एकादश स्कंध में भगवत् का वचन है कि गुरु को मेरा रूप जाने। भक्त माल के कर्ता का वचन है कि भक्त भक्ति, गुरु और भगवत कथन मात्र को चार हैं, नहीं तो वस्तुतः चारों एक ही स्वरूप हैं। गुरु कैसाही, कामी, क्रोधी, लोभी हो उसको भगवत् रूप जानना चाहिये, किसी विद्वान् का वचन है कि कामी गुरु श्रीकृष्ण स्वरूप है, क्रोधी गुरु श्रीवामन स्वरूप है, और धर्मात्मा गुरु राम रूप है ! भागवत् में लिखा है कि जो मनुष्य ज्ञानदाता गुरु को अन्य मनुष्य के समान जानता है, उसकी बुद्धि उस हाथी के समान है, जो स्नान करके अपने मस्तक पर धूल डाल लेता है। आज तक न तो कोई देखने में ही आया और न सुनने में ही आया है कि कोई विना-गुरु किये ईश्वर को प्राप्त हुआ है, जो २ ईश्वर को प्राप्त हुए हैं, गुरु के उपदेश द्वारा ही हुये हैं। विचार करने की बात है कि लौकिक विद्या भी विना गुरु के प्राप्त नहीं होती, तो भगवत् जो अलौकिक और गुह्य से भी गुह्य हैं, विना गुरु किस प्रकार प्राप्त हो सक्ते हैं? नहीं हो सक्ते. महाभारत में लिखा है कि जब तक गुरु न किया जाय तब तक कुछ प्राप्त नहीं होता। लोकोक्ति भी है कि विना ठगाये कोई ठाकुर नहीं बनता, इसलिये गुरु करना अवश्य प्रयोजन है। यह भी शिष्ट पुरुषों का वचन है कि वेद, पुराण, जप, तप आदि गुरु विना निष्फल हैं। वेद की आज्ञा है कि गुरु के उपदेश विना पूजा पाठादि जो कर्म किया जाता है, वह सब व्यर्थ है। इसलिए जिसको भक्ति और भगवत् प्राप्ति की इच्छा हो, उसको उचित है कि गुरु की शरण होवे। कई जातियों में नियम है कि संस्कार होने के बाद फिर गुरु नहीं करते और कई जातियों में यह रीति है कि संस्कार होने के बाद भगवत् प्राप्ति के लिये अलग गुरु किया जाता है, लाभ हानि से कुछ प्रयोजन नहीं रखते गुरु करने से ही प्रयोजन रखते हैं। परन्तु बड़े लोगों का कथन है कि "पानी पीजे छान, गुरु, कीजे जान"! है भी ऐसा ही धेले की हांडी भी ठोक बजा कर ली जाती है, इसलिये गुरु पहिचान कर ही करना चाहिये क्योंकि अंधेरी कोठरी में सूक्ष्म सुई रक्खी हुई है। एक तो उसको जानता है कि कोठरी में सुई निश्चय रक्खी हुई है और दूसरा जानता है कि अमुक स्थान पर दीवारमें गड़ी हुई है। इन दोनोंके शिष्य जब सुईको ढूंडने जांयगे तो पहिले का शिष्य तो ढूंडता फिरेगा, मिल गई तो मिल गई नहीं हार कर लौट आवेगा अथवा रह ही जायगा, ढूंढते २ मिले या न मिले, मिले भी तो न मालूम कब तक मिले इसका निश्चय नहीं हो सक्ता। और दूसरे का शिष्य अपने गुरु के बताये हुये स्थान पर सीधा चला जायगा और विना श्रम तुरन्त ही सुई का ले आवेगा, यह नहीं हो सकता कि नहीं मिले, अवश्य ही मिल जायगी। अभिप्राय इस कथनका यह है कि संस्कार हो जाने के पीछे जब कुछ समझ आजाय तो भगवत् की प्राप्ति के लिये भगवत् के जानने वाले को गुरु अवश्य करना चाहिये, बिना गुरु किये कुछ नहीं होता यदि उस गुरुसे भी कुछ संदेह रह जाय और अपने लाभ और अपनी इच्छा की

पूर्णता न हो, तो दूसरा गुरु करने में कोई हानि नहीं है और शास्त्र की भी आज्ञा है। दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु किये थे। श्रीरामचन्द्र जी के ब्रह्म-विद्या के गुरु वशिष्ठ जी थे और धनुर्विद्या के गुरु विश्वामित्र थे। याज्ञवल्क्य ने वैशंपायन ऋषि के पीछे सूर्य भगवान् को गुरु बनाया था। शुकदेव जी ने पिता को गुरु न करके जनक को गुरु किया इस प्रकार बहुत से दृष्टांत मिलते हैं। जब तक पूर्ण शान्ति न हो, एक, दो, तीन अथवा इससे भी अधिक गुरु करने चाहियें। शिष्य कोई जमीन या जायदाद नहीं है, जिस पर एक ही गुरु का अधिकार हो, हां! इतनी बात अवश्य है कि जिससे जितना सीखे, उसको उतना गुरु माने।

यद्यपि शास्त्रों में शिष्य और गुरु के बहुत से धर्म लिखे हैं परन्तु गुरु के चार मुख्य धर्म आवश्यक हैं, एक तो गुरु शास्त्र का ज्ञाता हो दूसरे भगवद्भक्त हो, तीसरे समदर्शी हो और चौथे वेद की आज्ञा के अनुकूल वर्तने वाला हो, इन सब से ऊपर एक धर्म सब शास्त्रों में कहा है कि गुरु अज्ञान के दूर करने के निमित्त है, जिस प्रकार हो सके शिष्य को भगवन् संमुख कर देवे। यह अर्थ गुरु शब्द में घटता भी है क्योंकि गु का अर्थ अंधकार है और रु का अर्थ दूर करने वाला है, इसलिये अज्ञान रूप अंधकार को दूर करने वाला गुरु है।

इसी प्रकार शिष्य के चार धर्म मुख्य हैं। प्रथम तन मन से गुरु की सेवा करे, दूसरे सेवा के समय सुख स्वाद का त्याग, तीसरे गर्व का त्याग और चौथे गुरु में दृढ़ विश्वास हो। श्रुति भगवती कहती है कि जिसकी भक्ति भगवत् और गुरु में समान है, उस महात्मा के सब मनोरथ आप से आप सिद्ध होते हैं और वह गूढ़ से गूढ़ अर्थ का जानने वाला हो जाता है। गुरु में विश्वास ऐसा हो कि जैसे भगवद्भक्तों को भगवत् में होता है और सेवा ऐसी हो कि जिस प्रकार अज्ञानी अपने शरीर की सेवा करते हैं। महाभारत के आदि पर्व में लिखा है कि धौम्र ऋषीश्वर के चार शिष्य थे, वे चारों गुरुमें दृढ़ विश्वास रखते थे और गुरु की सेवा करके केवल गुरु के आशीर्वाद से सब विद्या के ज्ञाता और दोनों लोकों के फल को प्राप्त होगये। यदि कोई यह प्रति वाद करे कि बिना परिश्रम केवल विश्वास से कैसे विद्या प्राप्त हो गई, तो इसका समाधान यह है कि उन्होंने गुरु में जो विश्वास किया, वह भगवत् रूप जान कर किया भगवत् ने गुरु द्वारा उनके सब मनोरथ सिद्ध कर दिये। सिवाय इसके कई स्थलों पर यह वर्णन है कि अमुक ऋषि ऐसे प्रताप वाले थे कि उनके स्थान में सिंह बकरी एक घाट पानी पीते थे, व्याघ्र का स्वभाव बदल जाना स्थान का प्रभाव है, इसी प्रकार गुरु का प्रताप भी अपने प्रभाव से क्षण भर में शिष्य को वांछित फल की प्राप्ति करा देता है। बहुत प्रसंगों में ऐसा हो चुका है और अयुक्त भी नहीं है। जैसे निर्मल जल कपड़े के मैल को दूर करके निर्मल कर देता है इसी प्रकार भले का आशीर्वाद शीघ्र लग जाता है।

उपरोक्त कथन से यह सिद्ध हुआ कि गुरु महात्मा योग्य होना चाहिये परन्तु आज कल ऐसे गुरु नहीं मिलते किन्तु ऐसे मिलते हैं कि चेला चाहे नरक में चाहे स्वर्ग में जाय, उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं, केवल द्रव्य खैंचने से उनको मतलब है, वे

मास अथवा साल में पधारे, आकर दुकानदारी फैलाई, यह बात, वह बात, टका धर मेरे हाथ, कूआ बनाना है, मंदिर की मरम्मत करानी है, विद्यार्थियों के भोजन का प्रबंध होना चाहिये, सड़क के किनारे पियाऊ खुल जाय तो अच्छा है, इत्यादि बातें बना कर रुपया पैसा, धोती अंगोछा जो हाथ आगया अंटी में चढ़ाया, चम्पत हुये, नियत समय पर फिर आने को कह गये। यदि किसी शिष्य ने अपने संदेह की निवृत्ति के लिये कोई बात पूछी तो उत्तर तो गया चूल्हे भाड़ में, अविश्वासी है, नास्तिक है, है, बातूनी है, अभिमानी है इत्यादि अनेक बातें उसके मुख पर सुनायीं, पीछे उसकी निन्दा करते फिरने लगे! शिष्यों का यह वृत्तांत है कि गुरु की शिक्षा ग्रहण करने, गुरुमंत्र जपने की तो बात ही क्या है, दो वर्ष पीछे गुरुजी घर पर पधारे तो मानों यम के दूत आगये, मन में विचारने लगे अरे यह क्या हुआ? अभी तो आये ही थे, फिर आगये! पांच चार दिन कम से कम ठहरेंगे, अच्छे २ मिष्टान दूध मलाई भोजन करेंगे। विदाई भी देनी पड़ेगी, कुछ न कुछ लेकर ही टलेंगें, जमीन पर गिरा हुआ गोबर बिना मिट्टी लिये थोड़ा ही उठता है? पूरी पलक है, क्या किया जाय! कैसे बनेगा वैसे बला टालनी ही पड़ेगी भला आज कल जब गुरु शिष्यों का यह वृत्तांत है, तो कहां गुरु और कहां चेला।

जैसे गुरु वैसे चेला, दोनों नरक में ठेलम ठेला।

विचार कर देखा जाय तो गुरुओं की कमी नहीं है, गुरु बहुत मिलते हैं परन्तु शिष्यों की आंखों में ही पट्टी बंध रही है। यदि थोड़ा सा भी परलोक और भगवन् का भय, मान कर गुरु की खोज करें, तो ऐसा नहीं है कि गुरु न मिले! कहा भी है, 'जिन ढूंढा तिन पाइयां'। परन्तु अब काम काज से फुरसत नहीं है, घर से पैर बाहर नहीं धरा जाता, परलोक का भय नहीं है, और भगवत् प्राप्ति की इच्छा भी नहीं है, तो गुरु कहां से मिले? कहीं छप्पर फाड़ कर भी किसी को धन मिलता हुआ देखने मे आया है? जिसको जो कुछ मिलता है प्रयत्न से ही मिलता है।

कहीं इस लिखने से यह भी न समझ लेना चाहिये कि जब योग्य गुरु मिलेंगे, तब ही गुरु करें यह बात नहीं है, ऊपर तो इस समय का वर्णन किया है। अभिप्राय इस लिखने का यह है कि गुरु का निश्चय अवश्य कर लेना चाहिये। केवल इतना देख लेना ही पर्याप्त है कि गुरु उपासना का जानने वाला है गुरु दीक्षा से उसको मंत्र मिला है, ऐसा गुरु कर लेना चाहिये। यह नहीं कि पोथी देख कर मंत्र ले लिया और शिष्य बन गये। जिसके उपदेश वचन पर दृढ़ विश्वास हो बस वह गुरु है। गुरु उसको हाथों हाथ संसार समुद्र से पार उतार देगा। धर्म कर्म गुरु के बुरे हों अथवा भले हों, शिष्य को सब धर्म रूप है क्योंकि शिष्य को दृढ़ विश्वास है। गुरु रूप भगवन् आप हैं, वे ही मार्ग दिखा कर दोनों लोकों के अर्थ को सिद्ध कर देंगें। यदि विश्वास न हो, तो कैसा ही महात्मा गुरु हो, उसके मिलने से कुछ लाभ न होगा। सच कहा है कि जो मनुष्य भगवन् से विमुख हो, उसको गुरु के अवलम्बन से ईश्वर मिल सक्ता है और जो गुरु न किया और गुरु के वचन पर विश्वास न हुआ तो कहीं ठिकाना नहीं है।

बहुधा ऐसा हुआ है कि शिष्य के विश्वास से

गुरु तर गये हैं, उनकी कथा आगे सुनाऊंगा एक कथा इस समय सुनाता हूं'।

एक खत्री के लड़के की कथा।

एक खत्री के लड़के ने अपने गुरु के मुख से सुना कि श्रीनंदनंदन महाराज व्रज में नित्य रहते हैं जो मन लगा कर ढूंढता है, उसको मिल जाते हैं। यह सुन कर लड़का भगवत् दर्शन का अत्यंत आकांक्षी होकर व्रज में गया और वहां श्रीनंदकिशोर को ढूंढने लगा परन्तु कुछ पता न चला, लोगों से पूछा तो किसी ने कहा गोलोक में हैं, किसी ने वैकुंठ में बताये। किसी ने कहा हैं तो व्रज में ही परन्तु देखने में नहीं आते, किसी ने कहा कि परम-धाम को गये हैं। लड़के को किसी के वचन पर विश्वास न हुआ और मन में कहने लगे कि मेरे गुरु का वचन कभी मिथ्या नहीं हो सक्ता, मेरे ढूंढने में कसर है! ऐसा सोच कर खाना, पीना, सोना सब छोड़ छाड़ कर व्याकुलहोकर ढूंढने लगा। जब कई दिन तक बिना खाये पिये बिना सोये बैठे फिरता ही रहा. तो करुणाकर दीन वत्सल घबराये और दर्शन देते ही बना, आकर कहने लगे 'भाई! जिसको ढूंढता फिरता है, वह मैं ही हूं'! लड़का भगवान के रूप की मधुरी और अनूप छवि देख कर चरणों में गिरपड़ा और कहने लगा:-

लड़का:-भगवन्! इसमें सन्देह नहीं है कि आप वही हैं, जिनको मैं ढूंढता फिर रहा हूं, परन्तु मैंने सुना है कि आप चोर और छलिया भी हैं, ग्वालिनों का मक्खन चुरा २ कर खा जाते हैं, बलि-राजा को छल चुके हैं, इसलिये जब तक मेरे गुरु आपको पहिचान कर निश्चय न कर देंगे, तब तक मुझे विश्वास नहीं आवेगा! बड़ों का भी कथन है कि नये आदमी का शीघ्र ही विश्वास करके उसके धोखे में न आ जाना चाहिये! आप मेरे गुरु के पास चलिये!

भाव प्रिय भगवान् प्रेम की रस्सी में बंधे हुये भक्ति के विश्वास के वश कुछ न कह सके, साथ हो लिये। लड़के ने भगवान् के छल और कपट के भय से उनका हाथ पकड़ लिया! दोनों तुरंत ही गुरु के स्थान पर आ पहुंचे आधी रात थी, गुरुजी अट्टे पर शयन करते धातु की आवृत्ति कर रहे थे! लड़का पुकार कर कहने लगा:-

लड़का:- महाराज! गुरु महाराज! किवाड़ खोलिये नीचे आइये! व्रज सुन्दर शोभा मन्दिर मन मोहन महाराज को लाया हूं, आप आकर पहिचान कर लीजिये।

चार बार के पुकारने में गुरुजी के कान में भनक पड़ी, लड़के की बात का विश्वास न आया समझे कि मिथ्या बक रहा है परन्तु क्या देखते हैं कि उजाला हो रहा है, शोभाधाम के मुख की झलक आभूषणों से विलक्षण चांदनी सी छिटक रही है। झरोकों की राह से ऐसा देखकर घबराकर उठे और खिड़की खोलकर झांके तो क्या देखते हैं कि सच है नट नागर सुख सागर, व्रजचन्द, छविसमुद्र, मदन मुरारी, बांके बिहारी, बांकी सजधज से खड़े हुये हैं। मुखारविन्द की चांदनी दशों दिशाओं में खिल रही है! कारी कारी मधुकर को लजाने वारी अलकें गोरे गोरे कपोलों पर छुटी हुई है। अलसीली आंखों में काजल शोभा दे रहा है। जवाहरात का जड़ाऊ मोर मुकुट शीश पर धारण किये हुये हैं!

कानों में मकराकार कुंडल हैं कुंडलों के मोतियों की झलक कपोलों पर पड़ रही है! कपोलों का झलक मोतियों पर पड़ रही है! नासिका में छोटा सा बुलाक है, बुलाक में सच्चा पड़ा हुआ है कंठा गले में है, कंठे के ऊपर पचरंगी माला है। माला के ऊपर जवाहरात और मोतियों का हार है, मोतियों के हार के ऊपर सुगंधित पुष्पों का विचित्र हार है! सुकुमार शरीर है, कोमल शरीर पर बागा है! बागे के ऊपर सुनहरी तार की मुक्केश में गोपियों ने मोती गूंथ कर झालर के समान लगा दिये हैं! हार के ऊपर जड़ाऊ हैकल झलक रही है। प्याजी रंग की जरी का दुपट्टा है दुपट्टे को कटि में कस रक्खा है! हाथों में कंगण, पहुंची और जड़ाऊ बाजूबंद हैं अंगुलियों में नाना प्रकार के नगों की सुवर्ण की अंगुठिया हैं।

भक्तों को आह्लाद देने वाली कुंवर कन्हैया की ऐसी अद्भुत चित्त आकर्षक छवि देख कर गुरु जी की आंखें चकाचौंध में पड़ गई और एक साथ पुकार कर कहने लगे।

अरे धूर्त! यह कैसी ढिठाई कर रहा है। किस बुरी तरह से हाथ पकड़ रहा है? यह नंद-नंदन, भक्तवर चन्दन, महाराजों के महाराज हैं! पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं! इनके दर्शन दुर्लभ हैं! कोटि जन्म तक महापुरुष कर्म करने से भी इन का दर्शन होना दुर्लभ है! तेरा कोई महान् पुण्य उदय हुआ है, जो तुझे इनका दर्शन प्राप्त हुआ है, और तेरे प्रेम की रस्सी में बंध कर तेरे साथ चले आये हैं! ठहर जा! मैं भी आता हूं, अभी आता हूं, दौड़ा हुआ आरहा हूं! ठहरा रह!

इतना कह कर गुरुजी तो आते ही रहे, नट-नागर सुत्र के अपार सागर लड़के सहित अंतर्द्धान होगये! गुरुजी आये तो क्या देखते हैं कि यहां तो कुछ नहीं! हाथ मलते रह गये! कभी अपने चेले के दृढ़ विश्वास पर दृष्टि करके उसकी सराहना करते थे, कभी अपने को धिक्कार देते थे! कभी दर्शन पाने से अपने को अहोभाग्य मान कर अङ्ग फूले नहीं समाते थे! अन्त में त्यागी होगये और अपने चेले के निश्चय के प्रभाव से भगवान् को प्राप्त हुये।

हे मंसाराम, तू भी मूर्खता छोड़ दे, ऊपर के स्वरूप का ध्यान किया कर, जैसे बन वैसे भग-वत् संमुख हो जा, यह ही मनुष्य जन्म का सार्थक है। भगवच्चरण कमलों के बिना किसी को कुछ प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मादि का देवता भी भगवत् के चरण कमलों की रज को अपना धन्य भाग्य सम-झते हैं, मनुष्यों का तो कहना क्या है? जो मनुष्य असावधान रह कर भगवत् की भक्ति में नहीं लगता, उसका अभाग्य है! तू भी भाई, समझ जा और रूप अनूप का चिंतवन किया कर! ऐसा करने से सब से पहिले तेरी नाव ही तीर पर पहुंचेगी।

कथा पादपद्माचार्य की।

पादपद्माचार्यजी परम भगवद्भक्त गुरु निष्ठ थे। गंगाजी के तट पर गुरु सेवा में रहा करते थे। एक समय गुरु तीर्थ को जाने लगे। पद्माचार्य को अपने वियोग से विकल होते हुए देख कर गुरु जी ने आज्ञा की कि गंगाजी को हमारा ही स्वरूप समझ कर उनका ध्यान किया करना। गुरुजी के जाने के बाद पद्माचार्य जी गंगाजी का पूजन करने लगे। कभी गंगाजी में चरण नहीं रखते थे। दूर

जल से स्नानादि कर लिया करते थे। दूसरे उनको ऐसा करते देख कर अप्रसन्न रहते थे। जब गुरुजी तीर्थों से लौट कर आये तो सबने उनसे पद्माचार्य जी की निन्दा की! गुरुजी पद्माचार्य के जी की बात जान गये कि मर्यादा के भय से गंगाजी में चरण नहीं डालते परन्तु सबका मोह दूर करने के लिये एक दिन गुरुजी ने गंगा में स्नान करते समय पद्माचार्य से अंगोछा मांगा। पद्माचार्य सोचने लगे कि इधर तो गुरुजी की आज्ञा है और उधर गंगाजी गुरु रूप हैं, गुरुजी कोई सौ गज के फासले पर खड़े हुये हैं, अंगोछा लेकर किस प्रकार उनके पास जाऊं। पद्माचार्य जी यह चिंता कर ही रहे थे कि इतने ही में कमल के पत्र और फूल गंगाजी में प्रकट हो आए और पद्माचार्य उन पत्तों पर पैर रखते हुये गुरुजी को अंगोछा दे कर गंगा तट पर लौट आए। गुरु ने ऐसा देख पद्माचार्य नाम रक्खा। सब साधु भी यह देख कर 'साधु' 'साधु' कहने लगे।

कु:—लीन्हे पद्माचार्य जी गुरुवाक्य शिर धार।
पूजी गंगा प्रेम से, गुरु सम सह उपकार॥
गुरु सम सह उपकार, पूजते गंगा माई।
दें न धार में पांव, कूप जल लेय नहाई॥
बना पद्म का सेतु, वस्त्र गुरु कूं जा दीन्हे।
भोला! कहि गुरु धन्य, लगा छाती से लीन्हे॥

गोसाईं तुलसीदास जी के लिखित उदाहरण

गतांक से आगे

(ले० श्रीमधुमंगल जी मिश्र बी० ए०)

जैसे घी से भरे कड़ाह में दीखते चन्द्र प्रतिबिम्ब को जलाने के लिये ईंधन लगाना अनुचित उपाय है और वृक्ष के कोटर में रहने वाले सर्प को मारने के लिये वृक्ष को काट डालना निष्फल उद्योग है उसी प्रकार से शारीरिक स्वच्छता आदि मानसिक स्वच्छता में निरर्थक सहायक समझी जाती हैं। यों उलटे उपाय जो किये जाते हैं वे व्यर्थ हैं। सीधा या उचित उपाय ईश्वर की कृपा और गुरुके अनुग्रह से प्राप्त होता है। धार्मिक तो नहीं पर नीति विषयक ऐसा ही एक श्लोक पञ्चतन्त्र में मिलता है:—

आत्मानदी संयम पुण्य तीर्था सत्योदका शीलतटा दयोर्मिः
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा

सारांश यह है कि अन्तरात्मा की शुद्धि जल से नहीं होती।

यह जगत् मिथ्या होते भी सत्यवत् क्यों प्रतीत होता है इसके कारण स्वरूप कैसे जी में बैठने वाले उदाहरण दिए हैं:—

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई॥
देखत सुनत कहत समुझत,
संशय सन्देह न जाई।

जो जग मृषा तापत्रय अनुभव,
होत कहहु केहि लेखे ।
कहि न जाइ मृगवारी सत्य भ्रम,
तें दुःख होइ विशेषे ॥
सुभग सेज सोवत सपने,
वारिधि बूड़त भय लागै ।
कोटिहु नाव न पार पाव सो,
जब लगि आपु न जागै ॥
अन विचार रमणीय सदा
संसार भयंकर भारी ।
सम संतोष दया विवेक तें,
व्यवहारी सुखकारी ॥
तुलसि दास सब विधि प्रपंच जग,
यद्यपि झूठ श्रुति गावै ।
रघुपति भगति संत संगति,
बिनु को भवत्रास नसावै ॥

संसार की सत्यता का भ्रम छूटता नहीं। देखता हूं कि जीवन क्षणिक है ! जन्मानन्तर मृत्यु ध्रुव है। धर्म ग्रन्थ भी ऐसा ही कहते हैं वा कथाओं में भी ऐसा ही सुनता और समझता हूं। परन्तु संसार की सत्यता का भ्रम नहीं ही छूटता। दुःख की सत्यता रहते, संसार को भ्रम नहीं कहते बनता। ऐसा यदि कोई कहे तो उदाहरण देते हैं कि मृग जल तो असत्य है। पर मृग उसके लिए भटक कर सचमुच पीड़ित होता है। पलंग पर पड़े २ सपने में अपने को डूबते देख भय का दुःख सत्य ही होता है जब लों शुद्ध बोध नहीं प्राप्त होता है तब लों भय तथा क्लेश की सत्यता अपरिहार्य है। छूटने के लिए राम भक्ति और सत्संगति अपेक्षित है।

भगवद्भक्ति और सज्जन समागम भगवत्कृपा ही से संभव है यह बात नीचे के पद्य में कुछ और सुन्दर उदाहरण देकर पुष्ट की गई है।

अस कछु समुझि परत रघुराया।
बिन तव कृपा दयालु ! दासहित !
मोह न छूटै माया ॥
वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुण,
भव पार न पावै कोई ।
निशि गृहमध्य दीप की बातन्ह,
तम निवृत्त नहीं होई ॥
जैसे कोउ एक दीन दुखी अति,
अशन हीन दुःख पावै ।
चित्र कल्पतरु काम धेनु गृह,
लिखे न विपति नसावै ॥
षट्रस बहु प्रकार भोजन कोउ,
दिन अरु रैन बखानै ।
बिनु बोले संतोष जनित सुख,
खाय सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकाश अरु,
विषय आस मन माहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग योनि,
भ्रमत सपनेहुं सुख नाहीं ॥

हंसः सोऽहं' और 'तत्त्वमसि आदि वाक्य जीव को चिताते हैं कि वह ईश्वर ही का अंश है। पर इन वाक्यों के कहने मात्रसे फल वैसेही नहीं होता जैसे रात्रि के समय घर के भीतर दीपक का नाम लेने से वा दीपक सम्बन्धी बातें करने से प्रकाश नहीं मिलता। अथवा जैसे कोई दीन दुःखिया भूखा कल्पवृक्ष या कामधेनुका चित्र खींचने से भोजन नहीं पाता, सच्चे कल्पवृक्ष की छायामें बैठ भो जाने

इच्छा करे वह प्राप्त होता है। कहते हैं कि कोई मनुष्य घूमता घामता कल्पवृक्ष की शीतल छाया में टुक विश्राम के लिए बैठा। उसके मन में आया कि यहीं शीतल जल। झरना बहता होता तो कैसा अच्छा होता। मन में बात आने की देर थी। तुरन्त बहता दीखा। उसने कहा क्या अच्छा होता कि कोई सुन्दरी सोहागिन चांदीका ग्लासमें जल भर के कुछ हलके भोजन समेत यहीं दे जाता। यह भी तुरन्त हुआ। तब वह अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुआ कि बात क्या है? जो मन में आता है सिद्ध होता जाता है। अब जी चाहता है यहां पलंग होता और मैं सुख से पैर फैला कर सोता। देखते २ पलंग बिछौना आगया और वह उस पर लेट कर चकित होता सोचने लगा कि यहां सुख तो प्राप्त हुआ पर निर्जन स्थान में कोई बाघ आकर मुझे मार न डाले। बस व्याघ्र आपहुंचा और उसे समाप्त कर डाला। यों कल्पवृक्ष और कामधेनु अपने आश्रित को सभी कुछ देने का सामर्थ रखते हैं पर उन का चित्र कामना सिद्ध में समर्थ नहीं होता। जो भोजन करता है उसे भोजन का सुख और संतोष प्राप्त होता है। परन्तु जो जन रात दिन छहों प्रकार के स्वादिष्ट पदार्थों के नाम ही लेता रहता है उसे सुख नहीं प्राप्त हो सकता। इसी भांति 'तत्वमसि' आदि वाक्यों के कहने सुनने से जीव को अपनी तथा ईश्वर की एकता का ज्ञान नहीं होता और वह भ्रम में पड़ी पञ्जरे बद्ध कीर के समान रहता है जब सच्चा ज्ञान मिलता है तभी पार्थक्य भाव लुप्त होता है। जब लों संसार के विषयों से उद्वेग होकर उदासीनता चित्त में नहीं आती तब लों जीव संसार में आत्मबोध के सच्चे सुख का अनुभव नहीं पाता।

कल्पना संसार का परिचय देते हुए गोसाइं जी एक उदाहरण देते हैं।

विटप मध्य पुतिका सूत्र महं कन्चुक बिनहिं बनाये।
मन महं तथा लीन नाना तन प्रकटत औसर पाये॥

अर्थात् वृक्ष की लकड़ी में काठ की पुतली छिपी रहती है। उसे कारीगर का हाथ छील छाल के प्रकट करता है और सूत्रों के वस्त्र में कंचुकी भी विद्यमान होती है उसे काट छांट के सीने वाला कंचुकी के रूप में परिवर्तित करता है। मन में भी वैसे ही नाना प्रकार के भावी जन्मों तथा शरीरों का संस्कार उपस्थित रहता है और जब पर्याप्त कार्य कारण संघटित होते हैं तब मन को वह शरीर या जन्म प्राप्त होता है। कल्पना के लिये कैसे उदाहरण ढूंढ निकाले गये हैं?

स्वार्थ परायण संसारी जनों से विमुख होने के लिये एक विचित्र उदाहरण यह है।

दै दै सुमन तिल बासि कै अरुखरि परिहरि रस लेत।
स्वारथ हित भूतल भरे मनमेचक तन सेत॥

अर्थात् संसार के जन देखने में तो बाहर श्वेत शुद्ध या भले जान पड़ते हैं पर उनका हृदय काला कलुषित होता है। तिल्लो को कोल्हू में डाल कर पुष्पों का गंध देकर सुगन्धित कर तैल को खींच लेते हैं। पर नीरस खली को परित्याग करते हैं। अर्थात् वे अपना लाभ देख सौहार्द दिखाते हैं। खली को फेंक देते हैं।

तन साथी सब स्वारथी सुर व्यवहार सुजान।
आरत अधम अनाथ हितको रघुवीर समान॥
नाद निठुर समचर शिखी सलिल सनेह न सूर।
शशि सरोग दिनकर बड़े पयद प्रेम पथ कूर॥

इसी प्रसंगमें ऊपर का उदाहरण कैसा हृदय-ग्राही है:-

सम्बन्धी लोगों का सम्बन्ध में होते जो प्रयोजन सापेक्ष रहता है। देवतागण व्यवहार में प्रवीण होते हैं अर्थात् लेना देना जानते हैं। जब लों पूजा पाते हैं अनुकूल रहते हैं। अवधि पूरी हो चुकने पर हानि भी कर देते हैं। वही हाल सांसारिक प्रभुजनों का है। दीन नीच अनाथ के हितु केवल भगवान् हैं। संसार में प्रेम करने पर भी प्रेम का निर्वाह नहीं किया जाता। उसके उदाहरण कहां कहां से खोज और खींच कर दो पंक्तियों में भर दिये गये हैं। हरिण व्याध के संगीत को सुन मोहित होता है और व्याध उसे बाण मार देता है। जिस संगीतनाद के प्रेम में मुग्ध होता है वह संगीत उसे हानि में तो सहायक होता है बचाने में कुछ भी सहायक नहीं होता उसी नाद के समान आचरण शिखी वा अग्नि की ज्वाला का होता है। पतंगे उसे देखप्रसन्न हो उस पर टूट पड़ते हैं। दीपक की ज्वाला उनके प्रेम को कुछ नहीं गिनती उलटे उन्हें जला कर नष्ट कर देती है। मछली जल के शरण में निवास करती है। पर जल अपने शरणार्थी के लिये कुछ नहीं करता बरन जल ही में प्रवेश करके मछुआ मछली को पकड़ ले जाता है मछली जीते तो पानी को खोजती ही थी, मरे पर भी उसे खोजती है। कहा है "मीन काटि जल धोइये खाये अधिक पियास" चकोर चन्द्रमा को कितना प्यार करता है पर चन्द्रमा क्षयशील उन्हें नहीं बचाता चकोर प्रेम से चन्द्र को निहारता हुआ बधिक द्वारा पकड़ा जाता है। कमल सूर्य के उदय से खिलता अस्त होने पर मुंदता है पर सूर्य इस प्रेम को कुछ नहीं समझता। गरमी के दिनों में जल के सूख जाने पर सूर्य कमल को सुखा डालता है। वैसे ही स्वाती की बूंद की आशा लगाये पपीहे को मेघ ओले बरसा के हानि पहुंचाता है। ये सब अर्थात् मृग, पतंग, मछली, चकोर, कमल और पपीहा अपने स्नेह में शूर हैं पर इनके स्नेही निर्दयी हैं। सच है संसार में स्नेह स्वार्थ में होता है निष्ठुर स्नेह केवल परमेश्वर में पाया जाता है।

आरत अधम अनाथ हित को रघुबीर समान॥

संसार में दुःख पाते हुए भी जीव से मोह छोड़ते नहीं बनता। इस मत को पुष्ट करने के लिये कैसे उपयुक्त उदाहरण हैं।

मेरो मन हरि हठ न तजै।
निसि दिन नाथ देउं सिख बहुविध करत सुभाउ निजै॥
ज्यों युवती अनुभवति प्रसव अति दारुण दुःख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि शूल शठ पुनि खल पतिहिं भजै॥
लोलुप भ्रमत गृहप ज्यों जहं तहं सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुं न मूढ़ लजै॥
हौं हार्यौ करि जतन विविध विध अतिशय प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

युवती प्रसव काल की वेदना का अनुभव हो चुकने पर भी फिर पति के पास जाती है। कुत्ता बार बार जूते भी खाता है फिर भी ललचाता (ललचाता) रसोई घर के पास घूमना नहीं छोड़ता अथवा यों कहो कि छोड़ा नहीं जाता। उसी प्रकार मेरा मन संसार के दुःखों को भोगता हुआ भी उनसे बिरक्त नहीं होता। सांसारिक विषय अत्यन्त प्रबल और अजेय हैं। मेरे हटाये न हटेंगे हे प्रभो! आप ही हटावें।

उदाहरण तो भरे पड़े हैं। लेख बढ़ता जाता

है कहीं विश्राम आवश्यक है। अतः एक और उदाहरण दे समाप्त करता हूं। भाव और युक्ति समझने वाले देखें विस्तार भय से टीका भी नहीं करता हूं।

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो।
साधन धाम विबुध दुर्लभ तन मोंहि कृपा करि दीन्हों॥
कोटिहु मुख कहि जाइ न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और मांगि हौं दीजै परम उदार॥
विषय वारि मन मीन भिन्न नहि होत कबहुं पल एक।
ताते सहिय विपति अति दारुण जनमत योनि अनेक॥
कृपा डोरि बंसी पद अंकुश परम प्रेम मृदु चारो।
एहि विधि बेधि हरहु मेरे दुःख कौतुक राम तिहारो॥
श्रुति विदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह रजु जोइ बांधै सोइ छोरै॥

लखि पतितन पै भीर

ले० श्री रमाशंकर जी मिश्र 'श्रीपति'

अधिक अब सही न जात रघुवीर।
मीत हित जे अहहि आपने, देत आज ते पीर॥
बिसरायो सुखसाज त्याग जग, जिन लगि दह्यो सरीर।
सालत निठुर आज तेई उर, जिनहि दिखायो चीर॥
करत रीति, अनरीति करत वे, धरहि प्रान किमि धीर।
है है अब उद्धार कौन विधि, परो पींजरे कीर॥
विधहि बैन उर मांहि बधिक के, गरल बुझे जनु तीर।
तुमहीं लखहु अनाथ नाथ यह, हृदय बन्यो तूनीर॥
बाढ़ी जरनि भार अब जीवन, नैनन उमड्यो नीर।
सुनियत पति राखत तुम "श्रीपति" लखि पतितन पै भीर

महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश

गतांक से आगे

[ले० भक्त रत्न श्री० मथुराप्रसाद जी]

एक राजाके कई रानियें थीं जो विदेश गया तो सब रानियों से कहा कि जो २ वस्तु मंगानी हो एक पत्रमें लिख कर लिफाफे बंद करके हम को देदो लौटते वक्त हम लेते आवेंगे जब राजा वापिस आने लगा तो लिफाफे खोल कर देखा। जिसने जो वस्तु मंगाई थी खरीद कर साथ लेली परन्तु छोटी रानी ने जो पत्र लिफाफे में बंद कियाथा उसमें किसी वस्तुका नाम न था केवल एक '१' का अंक लिखा हुआ था राजा हैरान हुआ एक के अंकका क्या अभिप्राय है, मन्त्रियों से संमति ली तो उन्हों ने विचार करके कहाकि महाराज! इसका प्रयोजन तो येही पाया जाता है कि रानी साहिब केवल आप को चाहती हैं और कोई वस्तु उन्हें नहीं चाहिये। राजाजी जब अपने घर पहुंचे तो और रानियों की मंगाई हुई चाजें तो उनके निवास

स्थानों में भेजदीं और आप अकेले छोटी रानीके पास पहुंचकर पूछने लगे कि '१' के अंकका मतलब क्या था रानी ने कहा बस यही था कि मेरे तो केवल आप ही हैं जो कुछ भी हैं आपही को चाहती थी सो आप आही गये।

प्रयोजन यह निकला कि ईश्वर को अपना समझ कर दूसरी वस्तु को न चाहे इसी का नाम अनन्यता है इसलिये "तस्यैवाहं" से "ममै वासौ" ऊंचे दरजे की भक्ति है।

सुखरामदास-श्रीगुरुदेव! आप को कोटिशः धन्यवाद है। आपकी कृपासे दास को समझ में भक्ति तत्व भली प्रकार से आगया। परन्तु 'सएवाहं' अर्थात् मैं वोही हूं यह जो तीसरा प्रकार भक्तिका बताया गया इसे सुन कर बुद्धि चकराती है क्योंकि भक्ति अथवा प्रीति दो शरीरों में ही बन सकती है। एक प्रेमी जो प्यार करने वाला है दूसरा प्रिय जिस से प्यार किया जाय, और जब ऐसी भावना की जाय कि मैं वो ही हूं तो दुई रही ही नहीं और दूसरा कोई रहा ही नहीं तो भक्ति या प्रेम शब्द ही निरर्थक ठैरेंगे। इस कारण से कृपा करके शीघ्र आज्ञा कीजिये कि 'स एवाऽहम्' मैं वो ही हूं, भक्ति कोटि में यह भाव क्योंकर आ सकता है।

महात्मा-प्रियशिष्य! तुम्हारा प्रश्न बहुत ठीक है "सएवाऽहम्,, यह तीसरे प्रकार की भक्ति सामान्य दृष्टिसे अति गहन प्रतीत होती है तथापि विचार करने से यह सबसे ऊंचे दर्जेकी सिद्ध होगी। अल्पज्ञ जीव सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान भगवान् होने का दावाकरे यह बात असंभव सी पाई जाती है। परन्तु दो प्रकार से ऐसा हो सकता है।

प्रथम वेदान्त शास्त्र के अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव केवलम्॥

ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या है जीव ब्रह्म का स्वरूप है कोई भेद नहीं। जब मनुष्य विवेक, वैराग्य, शम आदि षट सम्पत्ति, मुमुक्षुता, इन चार साधनों के द्वारा अधिकारी बन कर आत्म साक्षात् कार कर लेता है 'तब अहं ब्रह्मास्मि' इस महा-वाक्य के उच्चारण का अधिकारी हो जाता है। इसी के अभ्यास को अहंग्रह उपासना कहते हैं, परन्तु जो चार मुख्य वैष्णव संप्रदाय हैं उनके आचार्यों का सिद्धान्त इससे न्यारा है। उनका कथन है कि जीव और ब्रह्म कदापि एक नहीं हो सकते जीव का स्वामी भाव ईश्वर में रखना ही मुख्य वैष्णव धर्म है। और इसी में कल्याण है। श्रुतियों का अर्थ दोनों पक्ष वाले अपने २ सिद्धान्त के अनुकूल कर लेते हैं। परन्तु इस विवाद से प्रयोजन न रख कर जिज्ञासु को किसी एक सिद्धान्त पर दृढ आरूढ होना चाहिये-

वैष्णव आचार्य बतलाते हैं कि जीव जब पराकाष्ठा का प्रेमी भगवत् हो जाय तो प्रेमी और प्रियतम का भेद नष्ट होकर अभेद हो जाता है जैसे लोहा अग्नि में तप कर अग्नि रूप हो जाता है उसका रंग रूप और गुण सब बदल जाता है इसी प्रकार प्रेमी का शरीर विरह की प्रचंड ज्वाला में तप कर अपने प्यारे के तदाकार हो जाता है। जैसे भृंगी कीड़ा लट को पकड़ कर अपने स्थान में रख कर भूं भूं शब्द उच्चारण करता है तब वो पकड़ी हुई लट बहुत गहरे ध्यान से उस शब्द को सुनते २ उसी भृंगी के आकार (हम शकल) हो जाती है इसी भांति प्रियतम का अति

उत्कट प्रेम से ध्यान करते २ एकता हो जाती और 'स एव अहम्' की डिगरी मिल जाती है। इसी दशा को गोपियां महारास के समय प्रियतम श्रीकृष्ण-भगवान् के अन्तर्धान होजाने पर प्राप्त हुई थीं। स्वयं कृष्ण बन कर उनकी बाल लीला का अनुकरण करने लगी थीं उसी अवस्था को महामुनि शुकदेव जी ने श्रीमद्भागवत् में 'तन्मनस्काः तदात्मिकाः' इन शब्दों करके दिखलाया है।

इस प्रेम लक्षणा भक्ति का विस्तार से वर्णन करने से पहले हम यह समझाना चाहते हैं कि आज कल कलि काल के प्रभाव से अधिकारी बने बिना केवल आधुनिक भाषा वेदान्त की पुस्तकें पढ़ कर प्रायः वाचक ज्ञानी अहंब्रह्म बन कर कर्म उपासना छोड़ बैठते हैं। वोह क्यों कर पतित और भ्रष्ट हो जाते हैं सो सुनो–

कलिकाल के वाचक ज्ञानी।

बदरी नारायण की यात्रा में एक बुढिया की गठरी जिसमें उसके वस्त्र भी थे और कुछ रोकड़ भी थी चोरी गई वह बुरी तरह रोती पुकारती किसी को कोस रही थी। मार्ग चलने वाले यात्रियों ने उस से कहा माई ! तू किसे कोस रही है यहां तो जो आते हैं भगवान् के दर्शनों के निमित्त पूरे कष्ट सह कर यात्रा करते हैं, कोई दूसरे की चीज नहीं चुराता,ऐसे तीर्थ पर पाप कर्म कौन दुरात्मा चोरीकर सकताहै जो वज्र लेपके समान होजाय। बुढिया बोली भैया ! भगवत्दर्शनार्थी यात्रियों से तो ऐसा कदापि संभव नहीं हो सकता कि चोरी करके किसी की आत्मा सतावें, परन्तु मुझे आज कल के वेदान्ती ब्रह्म ज्ञानियों पर पूरा निश्चय है कि वह पाप करते किंचिन्मात्र भी नहीं डरते। इधर से दो हृष्ट पुष्ट साधु गये हैं उन्होंने मेरी गठरी को गहरी दृष्टि से देखा था और आपस में कह रहे थे कि पुण्य पाप स्वर्ग नरक कुछ नहीं सब मिथ्या है। यात्रियों ने बुढिया की यह बात सुन कर दया करके दौड़ लगाई तो थोड़ी दूर आगे जा कर उन कपटी साधुओं को पकड़ लिया। देखा कि गठरी भी उनके पास है। जब उन से कहा कि तुम लोग साधु भेष को क्यों लजाते हो, तीर्थ देशमें पाप करते भी नहीं डरते तो वह हंस कर कहने लगे ! भाई ! तुम बड़े भारी भ्रममें पड़े हो एक ब्रह्म के सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं सब मिथ्या है और पाप पुण्य किसे लगता है जीवात्मा तो परमात्मा का ही रूप है।

इसके उपरान्त चोरी दूसरे की चीज ले लेने को कहते हैं अपनी वस्तु आप लेने से चोर कोई नहीं कहलाता और वेदान्त शास्त्र बतलाते हैं कि 'सर्वंब्रह्म' सब ब्रह्म ही ब्रह्म है तो दूसरी कोई वस्तु ही नहीं, ब्रह्म रूप वस्तु का स्वामी ब्रह्म रूप जीवात्मा के सिवाय दूसरा ठैरता ही नहीं तो चोर क्या स्वामी हो सकता है।

इधर वेदान्ती साधु यह बातें बना रहा था, उधर एक यात्री पीछे जा कर बुढ़या को लिवा लाया। उसने दूर से देखते ही अपनी गठरी पहचान कर शोर मचाया, अरे ये ही मेरी गठरी है और ये ही हत्यारे राम के मारे चोर हैं। उसकी पुकार सुन कर सौ दो सौ यात्री एकत्रहो गये और चोर साधुओं की मरम्मत होने लगी तब तो वेदान्ती महात्मा सब ज्ञान उपदेश भूलकर पुकारने लगे अरे कोई बचा लो हमारे प्राण गये उस समय यात्री बोले कि तुम तो ब्रह्म अपने आप हो और सिवाय ब्रह्म के दूसरा कोई

है ही नहीं तो पुकारते किस को हैं और ब्रह्म तो अजर अमर है उसके प्राण निकलना कैसा ? निदान लोगोंने उन्हें छुड़ा दिया। गठड़ी बुढ़िया को दिलादी। वाचक ज्ञानी वेदान्ती इस प्रकार पतित हो जाते हैं।

एक वाचक ज्ञानी स्त्री।

पंजाब में प्रायः उदासी निर्मले साधु वेदान्ती विचरते हैं एक साहूकार को किसी वेदान्ती ने अपना शिष्य बना लिया और सेठ ने गुरु जी से विचार सागर पढ़ा और उनकी एक कन्या १४ वर्ष की कुमारी थी उसे भी पढवाया, जिसके आरम्भ में ही मंगलाचरण यह है कि:-

अब्धि अपार स्वरूप मम लहरी विष्णु महेश।

इस ग्रन्थ के पढ़ने से सेठ जी और कन्या दोनों वेदान्ती ज्ञानी बन गए। पहिले सेठ जी ठाकुर पूजा और एकादशी व्रत पुण्य दान आदि किया करते थे, अब वो सब छोड़ बैठे और बात बात में कहने लगे कि सारा संसार प्रपंच है, मिथ्या है, अविद्या कृत झूठा भ्रम है, नरक स्वर्ग आदि सब अज्ञानियों के लिए कल्पना मात्र है, हम तो शुद्ध ब्रह्म रूप हैं, जन्म मरणसे रहित आनन्द निधि हैं। इत्यादि वाचक ज्ञान का प्रभाव सारे घर वालों के चित्तों पर पड़ा। अड़ोसी पड़ोसियों को भी कर्म उपासना में तत्पर देख उपदेश सुनाया जाता था कि यह सारे जंजाल बखेड़े मात्र अविद्या मूलक हैं, अपने शुद्ध सच्चिदानन्द स्वरूप का ध्यान करो यह सब आडंबर मिथ्या हैं।

उपदेष्टा गुरु जी भी युवा अवस्था के थे, सेठ जी के घर रहकर नित्य मोहन भोग उड़ाते २ अधिक बलवान हो गए उधर कन्या सयानी हुई, पाप पुण्य का भय तो था ही नहीं गुरु जी ने कन्या को वेदान्त पढ़ा कर उसके साथ अनुचित व्यवहार करना आरंभ किया। सेठ जी ने कन्या का एक बड़े कुलीन वर के साथ विवाह भी कर दिया तो भी कन्या अपने पिता के घर रहनेमें प्रसन्न थी और उस तरुण साधु महात्मा से अधिक प्रसंग रखने के उपरान्त लड़की का और कई मनुष्यों के साथ निन्दित व्यवहार देखकर तमाम नगर में इस की चर्चा होने लगी। उसकी सखिया ने एक दिन उस से कहा कि नागरिक लोग तुम्हारी निन्दा करते हैं इस कारण अब हमें तुम्हारे पास आने में लज्जा आती है और हमें भी कलंकित होती हैं। सखियोंसे यह बात सुनकर सेठ पुत्री कहने लगी सो सुनिये

> ब्रह्मैव सर्वमिति वेदविदो वदन्ति,
> तस्मान्न मे सखि पराऽवर भेद बुद्धिः।
> जारे तथा निज वरे हृदि तोऽनुरागः,
> लोकाः किमर्थं सतीति कदर्थयन्ति॥

अर्थ यह कि सब ब्रह्म रूप है इस कारण भेद बुद्धि मेरे में नहीं है अपने पति और यार में मेरी प्रीति समान है हे सखि ! लोग वृथा मुझे व्यर्थ कुलटा बताते हैं यह नाहक बकवाद करते हैं।

एक और वाचक ज्ञानी राजकुमार

एक वेदान्ती राजकुमार शिकार को गया उस के हाथ से गोली एक गाय के लग गई। गोहत्या की चरचा रणवास में फैल कर बदनाम हुआ। परन्तु राजकुमार ने शिकार से आकर कुछ भी पछतावा न करके यथा पूर्व राग रंग मनाया, कहने लगा कि जीव तो अमर है फिर हत्या किसकी, और ब्रह्म सर्व व्यापक एकरस है उसमें भेद दृष्टि अविद्या

मूलक है, पाप पुण्य की बात ढकोसला मात्र है इत्यादि।

रात्रि को जब राजकुमार सोया तो हत्या उस राजकुमार की युवती कन्या का रूप धारण कर उस के पलंग के पास पहुंच कर राजकुमार को जगा कर बोली कि आज मुझे कामदेव बहुत सता रहा है मेरी काम शान्ति करो। सुनकर राजकुमार क्रोध में भर कर बोला कि बेटी तू कैसी अनुचित बात कहती है चली जा कहीं पिताके साथ पुत्री का यह व्यवहार हो सकता है, महापाप का बोल न बोल हट यहां से। यह वचन सुनते ही हत्या अपना असली रूप धारण कर उस पर सवार होगई और ललकार कर बोला। अरे दुष्ट गाय मार कर तो वेदान्ती बन गया और ब्रह्म बनकर पाप पुण्य को ढकोसला बताने लगा अब पिता पुत्री का भेद और पाप का भय जताने लगा। तू वचन मात्र का ज्ञानाभिमानी है। यह सुन कर राजकुमार का शरीर हत्यासे काला पड़ गया, इत्यादि अनेक दृष्टान्त वाचक ज्ञानियों के हैं।

महात्मा सुन्दरदास जी का वचन ऐसे ही विपरीत ज्ञानियों के विषय में है।

ज्ञानी की सी बात कहैं मन तो मलीन रहै,
वासना अनेक भरी रंक न निवारी है।
जैसे कोई आभूषण अधिक बनाय राखै,
कलई ऊपर कर भीतर भगारी है॥
ज्योंही मन आवै त्यूंही खेलता निशंक होय,
ज्ञान सुन सीख लियो निठुराई धारी है।
सुन्दर कहत वाके अटक न कोउ आहि,
कोई वासों मिल जाइ ताही को बिगारी है॥

अर्थात् मैं ब्रह्म हूं असंग निर्लेप हूं इत्यादि ज्ञानियों की सी बातें बनावें और मन जिन का महा मलीन है हजारों कामनायें भरी हुई हैं ऐसे मनुष्य औरोंको भी बिगाड़ देते हैं। और भी कहा है:-

पूर्ण ब्रह्म हूं मैं जग व्यापक धर्म अधर्म को मैं नहीं भागी।
वाचक ज्ञानी बड़े अभिमानी कहैं अस वानी विषय अनुरागी
पाप करैं न डरैं परलोक ते दान दयादिक सुकृत त्यागी।
लात तजें न भजें मथुरेश को क्यों न परें भवकूप अभागी॥

प्रयोजन यह है कि जब तक विवेक वैराग्य शम दम तितिक्षा आदि षट् सम्पत्ति और मोक्ष की प्रबल इच्छा यह साधन न हों ब्रह्म ज्ञान का अधिकार ही नहीं है और अहन्ता ममता की निवृत्ति हो कर देह में आत्म बुद्धि सर्वथा नहीं रहे उस समय तक कर्म उपासना को छोड़ बैठना और ऐसा कहना कि मैं ब्रह्म हूं असंग और पाप पुण्य से रहित हूं पतित हो जानेका कारण है, प्रेम की पराकाष्ठा में प्रेमी और प्रियतम का अभेद होजाय तो इसमें कोई बाधा नहीं।

सुखराम-श्रीगुरु महाराज! आपके उपदेश से बड़ा भारी लाभ हुआ आज कल के वेदान्तियों से मैं प्राय: धोका खाजाता था अब धोकेमें नहीं आऊंगा। जब तक ज्ञान के लक्षण न देखे जावें किसी को ज्ञानी न मानूंगा अब कृपाकर प्रेम लक्षणाभक्तिका विस्तार से वर्णन कीजिये, और यह भी आज्ञा कीजिये कि प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त क्योंकर हो, उसके साधन क्या और लक्षण क्या हैं, और परा भक्ति किसे कहते हैं उसमें और प्रेम लक्षणा में अन्तर क्या है?

महात्मा-प्यारे शिष्य! तुम्हारी रुचि जो इस परम तत्व के श्रवण में बढ़ रही है यह बड़े भारी सौभाग्य मूलक है जब परिपूर्ण पुण्य का उदय और भगवत् कृपा होती है तबही सत्संगमें मन लगता है। प्रेम पदार्थ का रहस्य वर्णन करने से पहले तुम को

एक पद सुनाता हूं जिस से उसका कुछ महत्व प्रकट होजाय।

प्रेम ही सार है संसार में कुछ सार नहीं।
जीना बेकार है भतार से गर प्यार नहीं॥
जोग जप तप भी करो ज्ञानी बनो मुक्त भी हो।
प्रेम बिन होता है दिलदार का दीदार नहीं॥
गर जरासा भी हरी प्रेमका हो दिलमें सरूर।
लुत्फे शाही की वहां कुछभी तो मिकदार नहीं॥
दिलमें पैदा हो तड़प दर्द विरह की गर आग।
कब है मुमकिन कि करै प्यार वो दिलदार नहीं॥
प्रेमियों पर है वो कुर्बान दयालु मथुरेश।
क्या किया जीके किया ऐसे को गर यार नहीं॥

जब प्रेमी के चित्त में प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो जाय तो प्यारे की विरह में जैसे जल से न्यारी मछली तड़फती है ऐसी व्याकुलता होजाती है, जिस प्रकार दूध पीने वाला बालक दूधके लिए, रोगी औषधि के लिये, चातक स्वांति की बूंद के वास्ते, चकोर चन्द्रमा के लिए सर्प चन्दन की सुगन्ध को, कंगाल धनको और कामिनी अपने प्यारे कन्त को चाहती ऐसी चाह प्यारे प्रीतम की प्रेमीके मन में रहती है।

मनहर छन्द।

नीर बिन मीन दुखी क्षीर बिन शिशु जैसे।
पीर की औषधि बिन कैसे रह्यो जात है॥
चातक ज्यों स्वांत बूंद चन्द्र को चकोर जैसे।
चन्दन की चाह कर सर्प अकुलात है॥
निर्धन ज्यों धन चाहे कामिनी को कंत चाहे।
ऐसी जा की चाह में ना कछु हु सुहात है॥
प्रेमको प्रवाह ऐसो प्रेम तहां नेम कैसो।
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है॥

गुरु नानक साहब सन्त कबीरदास जी, महात्मा दादू जो आदि महात्माओं ने प्रेमलक्षणा भक्ति को ही प्रधान मान कर उसी के द्वारा परम उच्च पदवी पाई और प्रेम की महिमा अपनी २ बानी में विशेष कर गाई है। 'स एवाहम्' इस दरजे के अधिकारी यह सन्त केवल प्रेम की पराकाष्ठा में हुए हैं। इन सन्तों को शरीर में अहम बुद्धि किंचिन्मात्र नहीं थी प्यारे परमात्मा की यादमें यह लोग तदाकार हो कर भगवत् रूप होगये थे कीट भृंगी न्याय ऐसे प्रेमियों पर ही पूरा उतरता है। पुस्तकें पढ़ कर कथन मात्र यह लोग 'अहंब्रह्म' नहीं बन गये थे।

आह्वान

(जे० पं० लक्ष्मीनारायण "कमलेश" जबलपुर)

तुमने कहाथा जब बाढ़ैगो अधर्म जग,
जाय भूमि भारत पै जन्म लै विचरिहौं।
पापी औ पाखंडिन के देश द्वेष मंडिन के,
काटि काटि शीश मध्य भूतल बिछइहौं।
जेते अनाचारी पर नारी रत भारतमें।
तिनका वध्वंसि करि ज्ञान ज्योति बारि हौं।
जरिहौं कपट जाल माल पहिरैहैं जौन।
शीघ्र 'कमलेश' च्युत धर्म को उबारि हौं

गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान

गतांक से आगे

(ले० श्रीस्वामी आत्मानन्द जी)

आत्म बोध कराने वाले सद्गुरु की महिमा का वर्णन किसी प्रकार नहीं होसकता। जिसके दिये हुये उपदेश के बदले में त्रिलोकी का राज्य भी दिया जाय तो यथार्थ गुरु ऋण का सहस्रांश भी नहीं हो सकता। लौकिक उपकार करने वाले गुरु का भी महत्व कितना विशेष है तो आत्म बोध कराने वाले का तो कहना ही क्या है। इसी कैमुतिक न्याय से गुरु को अनन्त महत्वता सिद्ध हुई।

बन्दौं गुरु पद पंकज, कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज, जासु वचन रविकर निकर॥

हे प्रियदर्शन भावी! 'सब तजि भरु हरि भज'। परन्तु बिना गुरुके 'हरि भज' का रहस्य नहीं जान सकते। अनेक टोलके टोल संसार में हरिभजन करने वाले हैं परन्तु इस रहस्य को जानने वाले बहुत थोड़े ही होंगे, जिन के हृदय राग द्वेष रूपी अग्नि से भड़भड़ाते ही रहते हैं और मत्सरता रूपी ईंधन अग्नि डालते ही रहते हैं, ऐसे बहुत होंगे कि जो कभी शांति को प्राप्त नहीं होते, ऐसे हतभागी पुरुषों की हरिभजन राख में घी डाल देने के समान है। जो अहंकार के घेरे से कभी बाहर नहीं होते और इसी को दिन दूना रात चौगुना बढ़ाते जाते हैं यहां तक कि इस अहंकार की कृपा से जन्म जन्मान्तर को प्राप्त होते हैं। ईश्वर के ज्ञान में अहंकार ही तो एक बाड़ है इसको समूल भस्म कर डाला तो बेड़ा पार है।

भावुक:-हे भगवन! आपके उपदेश युक्तवचन मेरे हृदय कमल में बाण के समान भेदन कर गये हैं, आप मुझको अपना शिष्य स्वीकार कीजिये और आत्म ज्ञान का उपदेश करिये।

सन्त:-हे भावुक मेरे दिए उपदेश से जो सच्ची बात है उसके कारण से तुझ को आल्हाद हो गया है, इससे तू शिष्य बनने को तैयार हो गया है। आत्म ज्ञान बिना वैराग्य नहीं ठहरता कहा भी है।

गुरु बिनु होय न ज्ञान, ज्ञान कि होय विराग बिनु।
गावहि वेद पुराण सुख कि लहहिं हरि भक्ति बिनु॥

इस लिये कुछ काल वैराग्य का अभ्यास कर जब वैराग्य की पराकाष्ठा होगीतब तू ज्ञान का अधिकारी होगा।

भावुक:- भगवन्! वैराग्य का स्वरूप क्या है?

सन्त:-वैराग्य का स्वरूप योग शास्त्र में श्रीभगवान् पतंजली ने दो प्रकार का कहा है एक वशीकार वैराग्य दूसरा परवैराग्य, सीधी साधी बोल चाल में राग से रहित होने का नाम वैराग्य है, स्वर्ग लोक और इस लोक के किसी पदार्थ की वांछा नहीं होना यानी विषयों की तृष्णा से रहित हो जाना वैराग्य है।

हे प्रिय भावुक! परम रहस्य और प्रभाव युक्त वचन तेरे प्रति कहता हूं, श्रवण कर क्योंकि तू मुझ में अतिशय प्रेम रखने वाला है, इस लिए तेरे हित की इच्छा से मार्मिक वचन कहता हूं। गुरु शब्द

का अर्थ परम सूक्ष्म है, दुर्विज्ञेय है, सर्व व्यवहार से अगोचर है। इस परमार्थ विषय मे इसकी निष्ठा की सिद्धि मे और मेरे वचन में तुझे अमृत पान से भी अधिक प्रीति करने वाले के लिये अत्यन्त श्रेयस्कर होगा। अवश्य हमारे इष्ट की सिद्धि होगी इस प्रकार की दृढ़ भावना करके आये हुए पुरुष को जो प्रीति पूर्वक श्रवण करे ऐसे अधिकारी के प्रति तत्व-वेत्ता परम रहस्य रूप ब्रह्मविद्या का उपदेश करें। तिसमें श्रुति प्रमाण है।

श्रुतिः— परीक्ष्य लोकान् कर्म चितान् ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभि गच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

इस प्रकार कर्मों करके प्राप्त दक्षिणायन और उत्तरायण मार्ग से पाने योग्य स्वर्गादि लोकों को (जो परिणाम में नाशवान् और जन्ममरण के देने वाले है) उन को भली प्रकार से विचार करके मुमुक्षु पुरुष वैराग्य को दृढ़ता से प्राप्त करे। (जिस कारण) कर्म रहित नित्य रूप परमात्मा कर्म करके प्राप्त होने योग्य नहीं है, इसी कारण वह विचारवान् पुरुष उस परमात्मा के जानने के लिए गुरु पूजा की सामग्री को हाथ में लेकर वेद वेदान्तों का पारंगत (और) आत्मज्ञान मे निपुण गुरु की शरण में जावे।

श्रुतिः—तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशांत चित्ताय शमान्विताय येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाचतां तत्वतो ब्रह्म विद्याम्॥ १२-१३॥

दृढ वैराग्य करके विरक्त है चित्त जिस का (और) बाह्याभ्यन्तर कामनाओं से विरक्त है जो ऐसे शरण में आए हुए उस शिष्य के अर्थ जिस विद्या करके सत्य अविनाशी परमात्मा को यथार्थ वह जान सके (युक्ति प्रति युक्ति अनुभव प्रमाणादि से) उस ब्रह्म विद्या को वह विद्वान (श्रोत्रिय ब्रह्म निष्ठ गुरु) उपदेश करे।

गृहस्थ

ईश्वर प्राप्ति रूप महान् कार्य की वैराग्य नींव है, इस लिये हे भावुक! वैराग्य जितना तीव्र होगा, उतनी ही नींव पक्की होगी। जैसे बिना नींव मकान नहीं बन सकता वैसे ही वैराग्य बिना परमार्थ प्राप्त नहीं हो सकता। आज कल ज्ञानी बनने के लिये तो सब तैयार हो जाते हैं परन्तु अन्तर में वैराग्य की छींट तक नहीं होता। यदि कोई वैराग्य की प्रशंसा करके समझावे तो कहने लगते हैं "क्या गृहस्थ ज्ञानी नहीं हो सकते? जैसे राजा जनक राज करते हुवे भी ज्ञानी थे वैसे ही हम भी ज्ञानी हैं। व्यवहार मे रहने से ज्ञान भाग नहीं जाता, हमने समझ लिया है 'आत्मा अकर्ता है, इन्द्रियां और अन्तःकरण अपना अपना भोग भोगते हैं' ज्ञानी और अज्ञानी का आचार एक सा ही होता है, परन्तु भेद इतना है कि ज्ञानी आत्मा को अकर्ता मानता है और अज्ञानी उसको कर्ता भोक्ता मानता है। आज कल ऐसे कहने वाले बहुत मिलते हैं। सूक्ष्म दृष्टि वाला संस्कारी पुरुष ऐसे कथन वाले को देखते ही पहिचान लेता है कि यह वाचक ज्ञानी महामूर्ख पक्का अज्ञानी है शब्द में ज्ञान नहीं है, ज्ञान शब्दातीत है। ज्ञान छुपता नहीं है। चहरे मे, क्रिया मे, कथन मे, सब में ज्ञान का प्रकाश होता है। वह सुज्ञ पुरुषों से छुपता नहीं है। कस्तूरी की सुगन्ध संदूक के अन्दर डिब्बे में छुपाने से भला कब छुप सकती है? वैराग्य बिना ज्ञान कभी नहीं होसकता। किसी प्रकार भी गृहस्थी ज्ञानी नहीं होसकता। बाह्य गृहस्थी वास्तविक गृहस्थी नहीं

है आंतर गृहस्थी छूटे बिना, आंतर वैराग्य हुए बिना कभी ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। बाह्य गृहस्थी आंतर गृहस्थी की छाया मात्र है। जब पूर्ण सामर्थ्य होता है और पूर्व संस्कार श्रेष्ठ होते हैं तब आंतरिक गृहस्थी छूटकर कितने ही समय पीछे तक बाह्य गृहस्था देखने में आती है, ऐसे विरले पुरुष जनकादिक हुए हैं। जनक नाम लेने को कैसे जल्दी तैयार हो जाते हैं। परन्तु जनक के आंतरिक गृहस्थी के बदले वैराग्य के टिकाव को मूर्ख कैसे जान सके? "कौन जाने पराये मन की"। (अपूर्ण)

एक भागवत् का प्रश्न

(ले० श्री० पूज्य भोले बाबा जी)

सर्वं पूर्णं सदा पूर्णमखण्डानन्द विग्रहम्।
अनन्तं जगदाधारं वन्दे रामं परात्परम्॥

शिवशंकर:-महाराज! मार्गशीर्ष की भक्ति में तो ज्ञान, वैराग्य और भक्ति विषयक लेख परमोत्तम हैं। एक से एक चढ बढ कर है। इस मासकी भक्ति पढ़ कर चित्त बहुत ही प्रसन्न हुवा। अतिथि सेवक दीनबन्धुदास का निबंध परम आनन्ददायक है। महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश पिछले कई माससे आ रहा है, बहुत ही अपूर्व रोचक और शिक्षाप्रद है। तलवार वाले साधु का दर्शन कराके भगवान् ने अर्जुन का गर्व दूर कर दिया और निष्कामता का अपने भक्तों को उपदेश दिया, यह तो बहुत ही ठीक किया परन्तु भगवान् भागवतों का अपराध करने वालों को भी तो दण्ड दिया करते हैं भगवान् अपना अपराध करने वालों पर इतने अप्रसन्न नहीं होते, जितने भक्तों का अपराध करने वालों पर अप्रसन्न होते हैं। राजा अम्बरीष का दृष्टांत इस में प्रमाण है कि दुर्वासा से परम ऋषिके ऊपर भी चक्र छोड़ दिया और दैत्यादिकों को दण्ड देने के तो अनेक दृष्टांत हैं। फिर भगवान् ने परम भक्तों पर कोप करने वाले और उनके मारने को साधु होकर भी तलवार रखने वाले को दण्ड क्यों नहीं दिया? प्राय: सभी भक्त किसी न किसी कामना से भजन करते हैं, निष्काम तो कोड़ों में कोई एकाद ही होता है। भगवान् से भगवान् की भक्ति तो सभों ने मांगी है और भगवान के दर्शन भी सभी भक्त चाहते हैं। इसको पढ़ कर तो सब लोक सभी भक्तों पर दोषारोपण करने लगेंगे क्योंकि कोई भक्त कामना से रहित नहीं है, दर्शन तो कम से कम सभी चाहते हैं।। भक्तिका उद्देश्य ही भगवत् के दर्शन हैं। भगवान् का गीतामें वचन है कि सभी भक्त मेरे प्यारे हैं। महाराज! मेरी भूल हो तो निकाल दीजिये क्योंकि भूल ही सब अनर्थों का कारण है। एक और भी मेरी शंका है इस शंका का समाधान होने पर दूसरा प्रश्न करूंगा,

भावुक की युक्तियुक्त शास्त्र सन्त सम्मत गूढ शंका को सुनकर सन्त बहुत देर तक भगवान् का ध्यान करते रहे और अन्त में प्रसन्न होकर इस प्रकार उत्तर देने लगे।

सन्त भावुक! वैष्णव-भागवतों पर तेरा इतना प्रेम देखकर मेरा चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है, उनका किंचित् भी अपमान तुझ से सहा नहीं जाता! भक्ति के पढ़ने में भी तेरी अत्यन्त प्रीति दीखती है, बहुत ही एकाग्र मन होकर 'भक्ति' का पाठ करता दीखता है, तभी तो इतनी गूढ शंका खोज कर लाया

है। भाई! भगवत् के चरित्र जल्दी से हर एक की समझ में नहीं आते, अभी तो भगवान् ने अर्जुन के अन्तिम प्रश्न का उत्तर नहीं दिया और हंस कर टाल दिया। अर्जुन का गर्व दूर करने को भगवान् ने यह सब माया रची थी। भगवान् की प्रेरणा से भागवतों में साधु की दोष बुद्धि होगई थी। जब भगवान् का तात्पर्य सिद्ध होगया तब भगवान् ने साधु में से माया खेंच ली और भगवान् के दर्शन करने से साधु को दिव्य दृष्टि हो गई तब भगवान् और अर्जुन के चले आने के बाद साधु इस प्रकार विचार करता हुआ पछतावा करने लगा।

साधु का विचार

ओहो! मैंने बड़ा अपराध किया है कि परम भागवतों पर दोषारोपण किया है। प्रह्लाद और अर्जुन दोनों को ही भगवान् ने अपनी विभूति बताया है, ऐसे परम भागवतों पर मुझे दोष लगाना युक्त नहीं है। मुझे तो जीव मात्रमें दोष न देखना चाहिये और मैंने परम वैष्णवों में दोषारोपण किया है यह मेरा महान अपराध है। भगवान् तो अजन्मा है, भक्तों की प्रार्थना से ही जन्म धारण करते हैं। शरीरधारी भगवान् का दर्शन तो भागवतों के अनुग्रह से ही होता है। भगवान का वचन है कि भक्तों का कल्याण करने के लिए ही मैं अजन्मा होकर भी जन्म लेता हूं। यदि भागवत् भगवत् से प्रार्थना न करें, तो भगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन किसी को हो ही नहीं! मनु शतरूपा ने अनेक वर्षों तक तप करके भगवान् से पुत्र होने की प्रार्थना की, सीता जी ने पूर्व जन्म में भगवान् को पतिरूप से प्राप्त होने की प्रार्थना की, तब साकेत लोक विहारी भगवान् ने नर शरीर धारण किया और वन वन घूम कर अपने भक्तों को दर्शन दिए और दुष्टों का वध करके मुक्ति दी। गज ने ग्राह से प्राण बचाने के लिये वैकुण्ठ से भगवान को बुलाया, तब तो कवियों ने अनेक भाव प्रकट किये हैं कि गरुड़ छोड़ करही भगवान् भागे, पलक मारने से पहले वैकुण्ठ से गज की रक्षा के लिये आ गए! प्रह्लाद प्रार्थना न करता तो आज नरसिंह भगवान् के कौन गीत गाता! अर्जुन रथ नहीं हंकवाता, तो भगवान् को निःस्वार्थी सारथी कौन कहता? द्रौपदी भगवान को नहीं बुलाती तो भगवत् का भक्तों पर कितना प्रेम है यह कैसे जानने में आता? और भगवान को भक्त-वत्सल, दीनानाथ आदि नामों से कौन पुकारता? भगवत् की महिमा जो कुछ लोकों में विख्यात है सब भक्तों द्वारा ही तो हुई है, इसलिए मुझे भक्तों की अवज्ञा स्वप्न में भी करनी योग्य नहीं है। भक्तों की क्या प्राणी मात्र की अवज्ञा उचित नहीं है! भला! फल फूल खाने वाले को शस्त्र रखने से क्या प्रयोजन? दण्ड अनुग्रह देना भगवत् का काम है, मुझे किसी को दण्ड देनेका विचार करने से क्या प्रयोजन है! मुझे तो केवल भगवत् का स्मरण ध्यान करना चाहिये, इसके सिवाय मेरा कुछ अधिकार ही नहीं है।

हे भावुक! इत्यादि अनेक विचार करने के बाद अपने को धिक्कार देते हुये साधु ने तलवार फेंक दी और भगवान का प्रेम पूर्वक, राग द्वेष छोड़ कर निरन्तर भजन स्मरण करने लगा। भगवत् और भागवतों के चरित्र अपार और दुर्बोध्य हैं, जितनी जिसकी बुद्धि होती है, उतना ही वह उनके चरित्रों को समझता है। बोल, दूसरी क्या शंका है?

शिवशंकर:-महाराज ! क्या भगवान रामचंद्र जी का शरीर पंचभौतिक था ?

सन्त-(विस्मय युक्त होकर) अरे ! राम ! राम ! यह क्या कहता है ? भक्त, भागवतों, शिष्ट, सत्संगी पुरुषों को ऐसा कहना महा पातक रूप है ! यह बात भूलकर भी सन्त महात्मा के सामने कहना उचित नहीं है, कहना क्या मन में लाना भी दोष रूप है। तेरे मुख से यह प्रश्न मुझे अच्छा नहीं लगा ! कोई अन्य शास्त्र संस्कार हीन अथवा भगवत् विमुख कहता, तब तो कुछ हर्ज नहीं था, परन्तु तुझे ऐसा कहना उचित नहीं है ! भगवत् का शरीर पंचभौतिक कहना पामरों और विषयासक्त मूढ़ पुरुषों का काम है, जिनकी बुद्धि रूप आंखों पर मोह की ऐनक लगी हुई है, वे ही ऐसा कह सकते हैं, वैष्णव व भागवत् और शिष्ट कोई ऐसा नहीं कह सकता ! राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के शरीर दिव्य और अलौकिक हैं। भक्ति तत्ववेत्ता उनके शरीरों को वैष्णवी शरीर कहते हैं। मोह, तत्व की अज्ञता, रुक्षता, वशता, काम, लोलता, मद, मात्सर्य, हिंसा, खेद, परिश्रम, असत्य, क्रोध, आकांक्षा, आशंका, चित्तविभ्रम, विवशता, परापेक्षा यह अठारह दोष वैष्णवी शरीर में नहीं हैं। लोलता का अर्थ चंचलता, लोभ और शिथिलता है। राम, कृष्णादि का शरीर इन अठारों दोषोंसे रहित विज्ञान आनन्द रूप और अनेक दिव्य गुणोंसे युक्त हैं। इन अनेक दिव्य गुणों का भक्तोंने छः गुणोंमें समावेश किया है। उनके नाम ये हैं, ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, वैराग्य और मोक्ष। ऐश्वर्य आदि ये छः गुण भगवान् वासुदेव में नित्य अप्रतिबद्ध और समस्त रूप से वर्तते हैं। उत्पत्ति, प्रलय, भूतों की गति अगति और विद्या अविद्या को जो जानता है, उसको वेदवेत्ता भगवान् कहते है। यह सब लक्षण राम, कृष्णादि में हैं, इसलिये वेद वेत्ता उनको भगवान् यानी परमेश्वर ही मानते हैं। इस लिये राम कृष्णादि के शरीरों को पंचभौतिक मानना नास्तिकपना है। जो लोग उनके शरीरोंको पंचभौतिक मानते हैं, वे अवश्य नास्तिक हैं। भाई तू तो पक्का आस्तिक और वैष्णव है, तुझे ऐसी शंका करनी युक्त नहीं है।

शिवशंकर-महाराज ! यह शंका मेरी नहीं है किन्तु मैंने 'भक्ति' में ही पढ़ा था कि भगवान् ने शबरी को अपने शरीर का बाध करके ध्यान करने को कहा और इस अंक में एक प्रसिद्ध शिष्ट और भगवद्भक्त ने वह ही शंका की है शंका करने वाले सज्जन से मेरा पूर्ण परिचय है, उनकी शंका भी युक्त और शास्त्रानुसार है। जब भगवान् का शरीर दिव्य और अलौकिक है, तो बाध करने की क्या आवश्यकता है, इसलिये भगवान् ने तो बाध करने को कहा नहीं होगा क्योंकि उन्हों ने अपने लिये 'मम' शब्द का प्रयोग किया है, बाध कहने वालेका ही भूल होगी . शंका करने वाले का कहना तो ठीक ही जचता है कि राम, कृष्ण के शरीर दिव्य और ध्येय हैं।

सन्त-भाई ! भगवत् का शरीर दिव्य और अलौकिक है, यह कथन निस्सन्देह सत्य है, परन्तु भगवान् का दिव्य और अलौकिक शरीर सब को प्रतीत तो नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा हो तब तो भगवान् लीला ही न कर सकें। भगवान् का अवतार लेते समय यह संकल्प होता है कि सिवाय मेरे भक्तों के मेरे यथार्थ स्वरूप का भान न हो, किन्तु सब मुझको नर रूप जानें ! यह ही कारण है कि श्री रघुनाथ जी दशरथ कौशल्या को पुत्र प्रतीत होते थे,

सीता जी को पति प्रतीत होते थे, जनक और सुनयना को जामातृ प्रतीत होते थे, शत्रु राजाओं को और दैत्यों को काल रूप प्रतीत होते थे, वशिष्ठ और विश्वामित्र को शिष्य प्रतीत होते थे। इसी प्रकार अन्य भक्तों को अपनी २ भावनानुसार प्रतीत होते थे, कंसादि राक्षसों को काल प्रतीत होते थे। अर्जुन को सखा प्रतीत होते थे, भीष्म का साक्षात् मायातीत सच्चिदानन्दघन प्रतीत होते थे दुर्योधन को अपने से मनुष्य और छलिया प्रतीत होते थे। जभी तो जब भगवान् ने दुर्योधन और दुर्योधन की सभा को अपना विराट् रूप दिखाया तो दुर्योधन ने कह दिया कि यह तो जादूगर है। भीष्मादि के समझाने पर भी वह उनको ईश्वर नहीं मानता था। मानता भी कैसे ? जो भगवान् की माया से मोहित है वह भगवान् को कैसे जान सकता है। यदि सभी भगवान् को जान जांय तो भगवान् फिर लीला ही क्या करें ? बहुत क्या कहूं, तूने रामायण में धनुष यज्ञ यानी सीता महारानी का स्वयम्बर और भागवत में कंसके वध का दृश्य पढ़ा ही है। भगवान् को सब अपनी २ भावनानुसार देखते हैं, तू स्वयं जानता है। इसी कारण आज कल भी माया मोहित शास्त्र संस्कारहीन नास्तिक पुरुष भगवान को मनुष्य कहते हैं। उन्हीं की आंखें खोलने के लिये लेखक ने भगवान् में से मनुष्यत्व बुद्धि का बाध करने को कहा है भगवान् का शरीर स्वरूप से दिव्य, अलौकिक और विज्ञानानन्द स्वरूप है परन्तु मूढ़ मनुष्य उनमें मनुष्यपना आरोप करते हैं, उस मनुष्यपने के बाध करने को ही लेखक कहता है, लेखक का यह अभिप्राय कदाचित् नहीं है कि भगवान् का शरीर पंचभौतिक है किन्तु भगवान् का शरीर जैसाकि शिवजी ने सच्चिदानन्द रूप कहा है, वैसा ही है, यह अभिप्राय है और यह ही भगवान् का अभिप्राय है भगवान् अपने शरीर के ध्यान करने को मने नहीं करते। यदि कोई भगवान् के दिव्य स्वरूप को न जानता हो और मनुष्य रूप में भी ईश्वरत्व बुद्धि से ध्यान करे, तो किसी प्रकार का विरोध नहीं है। भगवत् की कथा सुनने को तो लेखक मने करही कैसे सकता है, जबकि वह स्वयं ही कथा के आधार पर लेख लिख रहा है। इसलिये हे भावुक ! भगवान् का शरीर पंचभौतिक है, ऐसा भूलकर भी कहना युक्त नहीं है, भगवान् को पूर्ण परब्रह्म समझ कर उनका ध्यान किया कर और उनकी कथा का मन लगा कर पाठ और अभ्यास किया कर।

भगवान् के चरित्र ऐसे सुगम और अगम हैं कि बड़े २ भी उनके स्वरूप में शंका करने लगते हैं। भारद्वाज ने याज्ञवल्क्य से यह ही प्रश्न किया है कि दशरथनन्दन ही राम हैं या कोई और राम हैं क्योंकि वे तो सीता जी के वियोग में शोक करते हुये विलाप करते फिरते थे और रावण को क्रोध वश मारा था। इसलिये उनके स्वरूप में शंका होता है, पार्वतीने भी भगवान् का मनुष्य समझा था, शिवजी के समझाने से समझ में आया। गरुड़को भी ऐसा ही मोह हुआ था, काकभुशुंडि के समझाने से मोह दूर हुआ। विश्वामित्र, जनकादि को भी पूरण धोखा होगया था, जब ताड़का को मारा तो विश्वामित्र का मोह दूर हुआ और धनुष तोड़ दिया तब जनक का मोह दूर हुआ। भाई ! सगुण ब्रह्म का समझना कठिन है, निर्गुण ब्रह्म का समझना कठिन नहीं है क्योंकि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है, एक रस है इस लिये जल्दी समझ में आजाता है और सगुण ब्रह्म के सुगम

अगम चरित्र देख कर विद्वानों की बुद्धि भी चक्कर खाजाती है। यह ही बात काकभुशुंडि जी ने गरुड़ से कही है और भगवान् के अवतार के समय कौशल्या जी ने स्वयं कहा है कि हे प्रभु! आप करोड़ों ब्रह्मांड के स्वामी का मेरे गर्भ में आना सुन कर बड़े बड़े धैर्यवान पुरुषों का धैर्य छूट जायगा। यह बात प्रसिद्ध ही है कि जिन पर श्री रघुनाथ जी की कृपा है, वे ही उनके स्वरूप को जानते हैं, नहीं तो बड़े २ विद्वान् भी भूले हुये हैं, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है, ऐसे लोगों की बात पर ध्यान देना युक्त नहीं है।

हे भावुक! मैं तुझे ब्रह्म वैवर्त पुराण में लिखा हुआ श्रीकृष्ण और सनत्कुमार का संवाद सुनाता हूं, उस को सुनकर तुझे और अन्य किसी को भगवान् के स्वरूप में संशय नहीं रहेगा।

एक बार श्रीकृष्ण किसी वन में ऋषिमुनियों के दर्शन करने गये अथवा यों कहना चाहिये कि दर्शन देने गये। जब वन में पहुंचे तो मुनियों ने भगवान् से कुशल प्रश्न किया तो सनत्कुमार इस प्रकार कहने लगे।

सनत्कुमार-हे मुनियो! आप का कल्याण हो, आप ने अनेक जन्मों में जो तप किये हैं, उन तपों का इच्छित फल आप को प्राप्त होगया, क्योंकि साक्षात् भगवान् के आप दर्शन कर रहे हैं भगवान् से आप का कुशल प्रश्न करना निरर्थक है क्योंकि भगवान् तो कल्याण के बीज ही हैं। इस समय आप का कुशल है क्योंकि आप परमात्मा के दर्शन कर रहे हैं। भगवान् निर्गुण, निरीह, सर्व के बीज, चेतन स्वरूप हैं। देह और प्रकृति से भी परे हैं, भक्तों के अनुरोध से पृथ्वी का भार उतारने के लिये आविर्भूत हुये हैं। ऐसे भगवान् तो सर्वदा कुशल स्वरूप ही हैं।

श्री भगवान् भक्तों का अपमान सह न सके और इस प्रकार कहने लगे।

श्रीभगवान् हे सनत्कुमार! शरीर धारियों से कुशल प्रश्न करना उचित ही है, तो हे विप्र! मुझ से कुशल प्रश्न पूछना निरर्थक क्यों है, सार्थक ही है!

सनत्कुमार-हे नाथ! प्राकृत शरीर में सर्वदा शुभाशुभ हुआ करता है, नित्य देह तो क्षेम यानी कुशल का बीज ही है इसलिये उसके लिये शिव यानी क्षेम का प्रश्न निरर्थक ही है।

श्रीभगवान -हे विप्र! जो २ देह धारी हैं, वे प्राकृतिक ही समझे जाते हैं, उस नित्य प्रकृति के बिना कोई देह नहीं है।

सनत्कुमार-हे भगवन्! रक्त और बिन्दु से उत्पन्न हुये देह प्राकृतिक गिने जाते हैं, प्रकृति के नाथ, सर्व के बीज का शरीर प्राकृतिक कैसे होसकता है? नहीं होसकता! आप सर्व के बीज हैं, सर्व के आदि स्वयं भगवान् हैं, सब अवतारों में प्रधान हैं, अव्ययबीज हैं, वेद और वेदान्त आप को नित्य के भी नित्य, सनातन, ज्योति स्वरूप, परम परमात्मा कहते हैं। हे प्रभो! आप निर्गुण, पर और माया के ईश्वर हैं और अपनी माया से आप सगुण भी हैं, ऐसा वेदवेत्ता और वेदाङ्ग कहते हैं।

श्रीभगवान-हे विप्र! इस समय मैं वासुदेव हूं, मेरा शरीर भक्त के वीर्य के आश्रित है फिर प्राकृत शरीर में कुशल प्रश्न युक्त क्यों नहीं है? युक्त ही है।

सनत्कुमार-हे भगवन्! आप सब को आच्छादन करने वाले हैं, इसलिये वेदवेत्ता आप को वास कहते हैं, सब विश्व आप में से उत्पन्न होता है,

इसलिये आप निवास कहलाते हैं, आप के रोम २ में अनेक विश्व हैं, उन विश्वों के आप देव हैं इसलिये आप परमब्रह्मवासुदेव कहलाते हैं। आप का यह वासुदेव नाम चारों वेदों में है, पुराणों इतिहासों और यात्रा आदि में आप का यह नाम देखने में आता है, वेद और वेदान्त में रक्त वीर्य को आश्रित देह कहा है, ऐसा देह आप का नहीं है, इसमें मुनि साक्षी हैं, धर्म सर्वत्र ही है, यानी धारणा करने वाला सर्वत्र है, मेरे इस कथन के साक्षी वेद, सूर्य और चन्द्र हैं।

हे भावुक ! उपरोक्त कथन से श्रीकृष्ण के शरीर का नित्यत्व सिद्ध होता है। पाषाणादि भगवान् की मूर्ति के पूजन, भजन से भी नित्य श्रीकृष्ण के पूजन का फल प्राप्त होता है। अच्छा! तेरा मंगल सबका मंगल ! मंगल !! मंगल !!!

भजन

प्रीतम तुम मोहे प्राण ते प्यारो ॥ टेक ।
जो तोहे देखि हिये सुख पावत, सो बड़ भागन वारो ।
तुम जीवन धन सर्वस तुम ही, तुमही दृगन के तारो ॥
जो तुमको पल भर न निहारूं, दीखत जग अंधियारो ।
मोद बढ़ावन के कारण हम, माननी रूप को धारो ॥
नारायण हम दोऊ एक हैं, फूल सुगन्धि न न्यारो ।

२

आज सखी प्रीतम जो पाऊं, तो अपने बड़ भाग मनाऊं
सांवरी सूरत नैन विशाला, चन्द्र बदन गल मोतियन माला
रूप मनोहर चाल मराला, सुन्दरता पर बलिबलि जाऊं।
जो प्यारो इन गलियन आवे तो बिरहिन को दरश दिखावे
बैठ निकट मृदुवचन सुनावे, मैं उनको हंस कंठ लगाऊं।
नारायण जीवन गिरधारी, कब लेंगे सुध आय हमारी ॥
जो मोसों वो कहेंगे प्यारी, तो मैं फूली अंग न समाऊं।

३

भ्रातृगण यह उपदेश हमारा ॥ टेक॥
वेद शास्त्रपुराण निगमागम सब ग्रन्थन को सारा।
रघुवर चरण शरण होय उतरो भव सागर से पारा ॥
जाहि वेद कहैं शुद्धब्रह्म सो दशरथ राज दुलारा।
सर्व व्यापी सर्व अन्तर्यामी सर्व जगत आधारा ॥
छोड़ो सकल कुतर्क कपट मन जो होवे निस्तारा।
सत्य नाम इक श्रीरघुवरका मिथ्या सब संसारा ॥
ध्रुव प्रह्लाद आदि भगतन हित होत अकार मकारा।
दीन दयाल स्वामी सोई भये मनुज अवतारा ॥

४

कोई दिलबरकी डगर बतायदे रे ॥
लोचन कञ्ज कुटिल भ्रकुटी कर,
कानन कथा सुनायदे रे ॥ १ ॥
जाके रंग रंग्यो मेरो तन मन,
ताकी झलक दिखायदे रे ॥ २ ॥
ललित किशोरी मेरी वाकी,
चित्त की सांट मिलायदे रे ॥ ३ ॥

५

उलट पग कैसे दीनो नन्द ॥ टेक ॥
छांडे कहां उभय सुत मोहन, धृग जीवन मति मन्द।
कै तुम धन जोबन मदमाते, कै तुम छूटे बंद ॥
सुफलक सुत बैरी भयो मोको, लै गयो आनन्द कन्द।
राम कृष्ण बिन कैसे जीवों, कठिन प्रीति को फन्द ॥
सूरदास अब भई अभागिन, तुम बिन गोकुल चन्द ॥

६

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कलरव अरु कुञ्जन की छांहीं ॥

वे सुरभी वे बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जांही।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि २ बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मणि मुक्ता जिहि मांहीं।
जबही सुरत आवत वा सुखकी जिय उमंगत सध नाहीं
अनगिन भांति करी बहु लीला यशुदानन्द निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन गह, यह कह कह पछताई ॥

७

आदि सनातन हरि अविनाशी।
सदा निरन्तर घट घट बासी ॥ टेक ॥

पूरण ब्रह्म पुराण बखाने चतुरानन शिव अन्त नजाने
महिमा अगमनिगम जेहिगावेसोयशुधाजियेगोद खिलावे
एकनिरन्तर ध्यावें ज्ञाना पुरुष पुरातन है निर्वानी ॥ १ ॥
शुक शारद की नाम अधारा नारद शेष न पावे पारा
जपतप संयम ध्यान न आवे सोइ नन्दके आंगन धावे
लोचन श्रवण न रसना नासाबिन पद पाणि करे परकाशा
अरुणअसितसितबरणनधारेमुनिमन सामें कहाविचारे
विश्वम्भर निज नाम कहावै घर २ गोरस जाय चुरावे
जरा मरणते रहित अमाया मातपिता सुत बंधुन जाया
आदि अनन्त रहे जलशायी परमानन्द सदा सुखदाई
ज्ञान रूप हिरदे में बोले सोबछरनके पाछे डोले ॥ ११ ॥
जलथल अनिलअनलनभछायापांच तत्वमें जगउपजाया
लोक रचे पाले अरु मारे चौदह भुवन पलक में धारे
काल डरे जाके डर भारी सो ऊंखल बांध्यो महतारी
मायाप्रगट सकल जग मोहे अकरण करणकरे सोइसोहे
जाकी माया लखे नकोई निर्गुणसगुणधरे वपुजोई ॥ १६
शिव सनकादिक अन्तन पावे सो गोपन कीगाय चरावे
गुण अनन्त अविगति जनावे यश अपार श्रुति पारन पावे
चरण कमलचित रमापनोवे चाहत नेक नयन में जोवे
अकल अगोचर लीलाधारी सो राधा बश कुंज विहारी
जो रसब्रह्मादिक नहींपायो सोरस गोकुल गलिन बहायो

बड़भागी वे सब ब्रजवासी जिनके संगखेलें अविनासी
सूर सुयश कहि कहा बखाने गोविन्द की गति गोबिंद जाने

८

मुक्ति का सच्चा मार्ग हमें,
दिखला दिया वंशी वारे ने।
गीता का उत्तम पाठ हमें,
सिखला दिया वंशी वारे ने ॥ टेक ॥
भगवान् भगत के हैं वश में,
करते सहाय सब संकट में।
निज प्रेम का ले अवतार हमें,
परचा दिया वंशी वारे ने ॥ १ ॥
सब ही अज्ञान की निद्रा में,
भर रहे खूब खर्राटे थे।
कर ज्ञान प्रभात उठा करके,
बिठला दिया वंशी वारे ने ॥ २ ॥
निशि रूप निशाचर भूमि पर,
कर रहे पाप अंधियारी थे।
निज मूर्ति भानु से नष्ट उन्हें,
करवा दिया वंशी वारे ने ॥ ३ ॥
उन हृषीकेश हृदयेश्वर ने,
भूमि का भार उतार दिया।
दिश दिश में डंका वेदों का,
बजवा दिया वंशी वारे ने ॥ ४ ॥

पुस्तक परिचय

साधन पथ—ले० श्रीहनुमानप्रसाद जी पोद्दार, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर, मूल्य ≈)॥ यह साधन पथ के पथिकों के परमोपयोगी पुस्तक है। साधक को

उसके मार्गमें कौन कर्म हेय और कौन उपादेय है इस का भली भांति विवेचन किया गया है पृष्ठ संख्या ७२ है।

मानवधर्म-ले० श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर मूल्य ≡) पृष्ठ संख्या १०७ इस पुस्तक में मनु महाराज के बताये हुवे दश धर्मों पर सुन्दर व्याख्या की गई है पुस्तक संग्राह्य है।

प्रेम योग-ले० श्री वियोगी हरि जी, प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ संख्या ४१० मूल्य १।) हिन्दी संसार में यह अनुपम पुस्तक है। शुद्ध प्रेम के प्रेमियों को यह पुस्तक अवश्य संग्रह करने योग्य है।

तत्व चिन्तामणि-ले० श्री जयदयाल जी गोयन्दका प्रकाशक गीता प्रेस गोरखपुर मूल्य ॥–) इस पुस्तक में भक्ति,ज्ञान,वैराग्य निष्काम कर्म आदि अनेक विषयों पर शास्त्रके प्रमाण सहित बहुत गम्भीर विचार किया है पुस्तक उपादेय है।

श्रीमद्भगवद्गीता भजन सप्तशती-ले० श्रीलालजी महाराज तथा प्रकाशक नरहरी लाल महाराज कृष्ण मन्दिर ज्युबिली बाग बड़ोदा। पुस्तक में श्रीमद्भगवद्गीता के प्रत्येक श्लोक के नीचे उनके भावानुसार संस्कृत के पद बना कर रक्खे हैं अधिकारियों को बिना मूल्य दी जाती है।

(सम्पादक)

संबोधन

(ले० श्रीमदनगोपाल 'सिंहल')

रे मन ! स्थिर होत न क्यों तू ऐसे धक्के खाता है।
क्या सचमुच ही तू अपने प्रियतम को पाना चाहता है॥
पर ऐसी आसानी से ही पाना बहुत अनारी है।
उसके पास पहुंच जाना ही रे मूरख ! अति भारी है॥

निज प्रीतम के शुचि केशों तक यदि तू पहुंचा चाहता है
तो कंघी सम आरे नीचे क्यों नहीं शीश झुकाता है॥
सोच समझ ले जब तक सुरमा सा नहीं पीसा जावेगा।
तब तकही निज प्रियतम की आंखों तक पहुंच न पावेगा

यदि अपने प्यारे के कानों तक तू पहुंचा चाहता है।
तो मोती की भांति न तू क्यों अपनी देह छिदाता है॥
देख ! पुष्प जब टूट डाल से अपनी देह बिंधाता है।
तभी हार बन कर गल में पड़ने का आदर पाता है॥

इसी भान्ति जो निज प्रियतम हित लाखों कष्ट उठाता है
उससे मिलने को व्याकुल हो रोता है बिलखाता है॥
बिन उसके जिसको न पहनना, सोना, खाना, भाता है।
उसे ढूंढने के हित वन गिरि कन्दराओं में जाता है॥

रटते रटते उसे जिस समय वो तन्मय हो जाता है।
उसी समय अपने में वो निज प्रियतम को लख पाता है॥
बोल अरे मन ! उस हित तैंने कष्ट कौनसा पाया है।
उसी पर सभी चढ़ाने को निज को कब तत्पर पाया है॥

जिस दिन भी तू उस पर अपना रे सर्वस्व चढ़ावेगा।
सच कहता हूं उसी दिवस प्रियतम के दर्शन पावेगा॥
निज अस्तित्व भुलाकर जब तू उसकी रटन लगावेगा।
उन्हीं रटन की डोरों में बन्ध कर वो दौड़ा आवेगा॥

देख एक ही बार उसे फिर तू स्थिर हो जावेगा।
इधर उधर इस दुनियां में फिर नाहीं दौड़ लगावेगा॥
इसी हेत कहता हूं तुझ से यही बात है केवल सत्य।
उस परही सर्वस्व चढ़ा के अरे 'मदन' होजा निश्चल॥

भक्ति के संरक्षक

भक्त नन्दकिशोर जी चर्खी दादरी १११)
लेफ्टनेन्ट सरदार रघुबीरसिंह जी सांधावालिया राजा सांसी अमृतसर १११)
पं जैनारायण जी भोड़ाकला, गुड़गावां ११०)
धर्म सीह मावजी जेठवा कालरीप्रोप्राइटर झरिया १०१)
ला० नूनकरणदास जी अग्रवाल भिवानी। १०१)
आनरेबिल सरदार जुगेन्द्रसिंह जी मनिस्टर आफ एग्रीकल्चर लाहौर ,,
बाई बदामो देवी पुत्री लाला गनेशीलाल चर्खीदादरी ,,
राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ, बी, ई, रामपुरा ५१)
सेठ अर्जुनदास जी भटिण्डा ५१)
ला० जौहरी मलजी रेवाड़ी ५१)
सेठ उमरावसिंह जी डालमियां चिड़ावा ५१)
मुन्शी चगडूमल बलिराम जी भटिण्डा ५१)
सर आपा राव भातोले साहिब सी. एस. ई. के. बी. ई. रेवेन्यू मेम्बर गवालियर ५१)
प्रो० बाबूलाल जी भार्गव एम. ए. दिल्ली ४२)
राव श्रीराम जी रईस नांगल २५)
महाशय शोभाराम जी डूंगरवास २५)
बाई लक्ष्मीदेवी भगनी राव जगमालसिंहजी रईस नांगल ,,
श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ,,
सेठ बनवारी लाल जी लोहिया दिल्ली ,,
ठाकुर उमरावसिंह जी रईस नान्धा ,,
लाला दुर्गाप्रसाद जी भार्गव कुतबपुर ,,
राय बहादुर सरदार शोभासिंह जी आनरेरी मजिस्ट्रेट नई दिल्ली ,,
श्री भक्ताणीदेवी धर्मपत्नी लाला नन्दकिशोर जी चर्खीदादरी ,,
श्रीमती गोदावरीदेवी भगनी लाला प्रभुदयाल जी ,, ,,
श्रीमती गणपतिदेवी धर्मपत्नी लाला गंगाप्रसाद जी दाहरीवाले, साहबगंज ,,
राव गजराजसिंह जी बी, ए, एल, एल, बी; गुड़गावां ,,
सेठ नागरमल जी सेखासरिया आनरेरी मजिस्ट्रेट मिचनाबाद ,,
प्रेमसुख हीरालाल जनरल ठेकेदार रेवाड़ी ,,
ऐस, जे, राव पंवार होम मेम्बर गवालियर स्टेट, ,,
राय बहादुर सरदार बसाखासिंह जी नई दिल्ली ,,
पी, एन, कौल बैरिस्टर दवान भूतपूर्व दिवास स्टेट लाहौर ,,
चौधरी जीवनदास जी आनरेरी मजिस्टेट झंग ,,
लाला कृपाराम जी जींद २५)

सहायक

पी. टी. शाह जयपुर
जमादार उमरावसिंह भाड़ावास
राव साहब चौधरी हेतराम जी दौलतपुर
चौधरी हुकमासह जी निखरी
पण्डित जगन्नाथ जी रेवाड़ी
लाला अमीचन्द नरसिंहदास भिवानी
चौधरी गणपतसिंह जी यादव पटीकड़ा
चौधरी मनेहरसिंह जी ,, पाल्हावास,
लाला छोटेलाल घासीराम जी दिल्ली
लाला सरदारीलाल जी क्लाथ मार्केट दिल्ली
चौधरी इन्द्रसिंह जी सिरहोल
बाबू शिवरामसिंह जी गढीबोलनी
माई गुलाबोदेवी दिल्ली
लाला बनारसीदास दिल्ली
महाशय शादीराम जी मस्तापुर, रेवाड़ी
श्रीमती सूरज देवी धर्मपत्नी चौधरी जोरावरसिंह जी एडीशनल जज अलीगढ़।
श्रीमान् पण्डित जयराम जी 'सनातन' देहली
रा० ब० लेखनारायण सिंह जी बाढ, पटना
रा०सा० बांकेबिहारीलालजी तहसीलदार चिड़ावा
बा० बैजनाथसिंह यनंगयोंग, बर्मा
ठाकुर भूरसिंह खण्डेला, जयपुर

१३) सेठ मेलाराम जी अग्रवाल भिवानी
११) जमादार दीपचनद जी ५)
११) लाला ओंकारमल जी कानपुर ५)
११) चौधरी दौलतराम जी पटवारी नाहरी ५)
११) लाला हरिश्चन्द्र जी प्रेमहाउस, दिल्ली ५)
११) पण्डित मथुराप्रसाद जी जमालपुर ,,
बाबू जगन्नाथ यादव लखनऊ ,,
श्रीमती सुमित्रादेवी पान का दरीबा जैपुर ५)
लाला न्यादरमल जी दिल्ली ५)
लाला रामेश्वर जी गुप्ता ,, ,,
१० लाला प्रभुदयाल जी जतोस्व ,,
७) त्रिवेणीदेवी धर्मपत्नी लाला रामकरणदास सरक ,,
५) लाला श्रीराम जी गुप्ता भटिण्डा ,,
५) बाबू जयदयाल भार्गव भोड़ाकलां ,,
रा०सा० ला० सेवकराम एम, एल, सी- लाहौर ,,
पं, नानकचन्द एम, एल. सी लाहौर ,,
श्रीमान् धानी चन्द लाहौर ५)
श्रीमती सरस्वती देवी आश्रम रेवाड़ी ५)
श्रीमती दुर्गीदेवी भिवानी ५)
डाक्टर कुन्तलकुमारी दिल्ली ५)
हवलदार ठाकरसिंह मूसपुर ५)
सूरजमल सुरोलिया खेतड़ी ५)

भक्ति के नियम

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना, गो रक्षण और उसके लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना, सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना, राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. अग्रिम वार्षिक चन्दा सर्व साधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह पत्रके संरक्षक और ५) देने वाले सहायक होंगे।

५. बाहर का कोई भी व्यापारिक विज्ञापन नहीं लिया जायगा।

६. लेखोंको प्रकाशित करना, न करना, घटाना, व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और व प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नाम से होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति" नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर के लिये जवाबी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. वेदोपदेश		२२९
२. भक्त दामोदरदास		२३१
३. भगवद्भक्ति [श्री पूज्य भोले बाबाजी		२३५
४. गोसांई तुलसीदास जी के लिखित उदाहरण [श्री मधुमंगल जी मिश्र बी० ए०		२४१
५. महात्मा सच्चिदानन्द का उपदेश [भक्त शिरोमणी श्रीमथुराप्रसाद जी		२४५
६. आह्वन (कविता) पं० लक्ष्मीनारायण 'कमलेश'		२५०
७. गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान [श्रीस्वामी आत्मानन्द जी		२५१
८. एक भागवत् का प्रश्न [ले० श्री पूज्य भोले बाबा जी		२५३
९. भजन		२५८
१०. पुस्तक परिचय		२५९
११ सम्बोधन (कविता) [ले० श्री मदनगोपाल जी सिंहल		२६०

REGD. No. L. 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवत्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवत् गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	वेदोपनिषत्	,,	।=)
४.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	=)।
५.	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	=)॥
६.	ज्ञान भक्ति योग संग्रह	,,	=)॥
७.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	=)।
८.	सत्य शब्द संग्रह	,,	।=)
९.	शब्दसंग्रह	,,	=)॥
१०.	सारसंग्रह	,,	≡)
११.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	॥)
१२.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१३.	भगवदंक	,,	॥।)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालोंको डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।